श्रीः

सुखशर्वरी

उपन्यास

श्रीमन्निम्बार्कसम्प्रदायाचार्य

श्रीकिशोरीलालगोस्वामि-द्वारा

वङ्गभाषा के आश्रय से विशुद्ध आर्यभाषा

में लिखित ।

"अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधितां धूलीलवः शैलतां,
मेरुर्मृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणप्रायताम्॥
वह्निः शीतलतां हिमं दहनतामायाति यस्येच्छया,
लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने दैवाय तस्मै नमः॥"

(क्षेमेन्द्रः)

श्रीछबीलेलालगोस्वामि-द्वारा

श्रीसुदर्शनप्रेस, वृन्दावन से

छपकर प्रकाशित ।

दूसरीबार १०००

संवत् १९७३

सन् १९१६ ई०

मूल्य पांच आने ।

राजसिंह ।

ऐतिहासिक उपन्यास

बङ्गसाहित्य सम्राट बाबू बङ्किमचन्द्र चटर्जी महोदय के सुप्रसिद्ध उपन्यास "राजसिंह" का यह सुन्दर हिन्दी अनुवाद है बङ्किम बाबू के लिखे हुए कुल उपन्यासों का यह शिरोभूषण है राजकुमारी चञ्चल का लड़कपन और धर्म्मदृढ़ता, उदयपुर के क्षत्रिय-कुलभूषण भारत गौरव महाराणा राजसिंह का आश्रितवात्सल्य और वीरत्व, माणिकलाल की चालाकी और प्रभुभक्ति, राजपूत कन्या जोधपुरी बेगम का जातीय जोश, औरङ्गजेब का चरित्र चाञ्चल्य मुसलमानों से राजपूतों का भीषण युद्ध और जेबुन्निसा प्रभृति मुगलराज-कन्याओं का कुत्सित-चरित्र प्रभृति का चित्र इसमें बड़ी निपुणता से खींचा गया है। इस पुस्तक के पढ़ने से हृदय में कभी वीरता, कभी करुणा और कभी क्रोध उत्पन्न होता है। इतिहास की जानने योग्य बहुतसी बातें मालूम होती हैं। हम जोर देकर कहते हैं, कि ऐसा सुन्दर ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी भाषा में अबतक नहीं छपा था। मूल्य २॥) ढाई रुपए, डाक व्यय चार आने।

श्रीः

सुखशर्वरी

उपन्यास

श्रीमन्निम्बार्कसम्प्रदायाचार्य

श्रीकिशोरीलालगोस्वामि-द्वारा

बङ्गभाषा के आश्रय से विशुद्ध आर्य्यभाषा में लिखित ।

"अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधितां धूलीलवः शैलतां,
मेरुर्मृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणप्रायताम्॥
वह्निः शीतलतां हिमं दहनतामायाति यस्येच्छया,
लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने दैवाय तस्मै नमः॥"
(क्षेमेन्द्रः)

श्रीछबीलेलालगोस्वामि-द्वारा
श्रीसुदर्शनप्रेस, वृन्दावन से
छपकर प्रकाशित ।

दूसरीबार	संवत् १९७२	मूल्य
१०००	सन १९१६ ई०	पांच आने ।

श्रीः

प्रथम संस्करण की भूमिका।

प्रेम और प्रेमत्व को सभी चाहते हैं, पर इसका उपाय बहुत कम लोग जानते होंगे। प्रेमिक प्रेम पाने के लिये व्याकुल तो होते हैं, सभी अपने लिये दूसरे को पागल करना चाहते हैं, पर अभी तक इसका उपाय कितनों ने नहीं जाना है। इसका अभाव केवल उपन्यास ही दूर करता है, इसलिये प्राचीनतम कवियों ने और सांप्रतिक यूरोपीय कवियों ने उपन्यास की सृष्टि की। जो बात झूठ-सच से नहीं होती, तंत्र मंत्र यंत्र से नहीं बनती, वह प्रेम के विज्ञान "उपन्यास" से सिद्ध होती है। इसके बिना किसी को वश वा संमोहित नहीं कर सकते। इन सभों के साधन का एक-मात्र प्रधान शस्त्र तंत्रस्वरूप उपन्यास ही है। इसके पढ़ने से मनुष्य के हृदय के ऊपर बड़ा असर होता है और सब बात बनजाती है।

प्रेम उत्पन्न होने से उसको स्थिर करना चाहिए, उसीसे प्रकृत सुख मिलता है। इसलिये प्रेम की वृद्धि और उसके आस्वाद के लिये उपन्यास महौषधि स्वरूप है। जो प्रेम के पिपासु हैं, वे इसमें प्रेम को ज्वलन्तछबि देख कर शीतल होते हैं। जिसके हृदय में सदा प्रेम की तरंग उठा करती है, और जिसका हृदय प्रेम का नवविकसित कानन है, उसके लिये उपन्यास हृदयमणि के तुल्य है।

इसमें प्रेम की प्रबलता, प्रणय की उन्मत्तता, चाह की मत्तता, यौवन का पूर्ण बिकाश, लालसा का प्रबल प्रवाह, कामना का वेग, रस की तरंग, प्रीति की लहरी, सभी कुछ रहते हैं; इसीलिये कवियों ने साहित्यश्रेणी में उपन्यास को श्रेष्ठ गद्दी दी है।

१ अक्तूबर, सन् १८९१ ई० } रसिकानुगामी,
आरा } श्रीकिशोरीलालगोस्वामी।

श्री:

द्वितीय संस्करण की भूमिका।

यह उपन्यास सन् १८८८ ई० में लिखा गया और सन् १८९१ ई० में भारतजीवन प्रेस में छपा था। आज ईश्वरानुग्रह से इतने दिनों के बाद यह दूसरी बार छापा जाता है। उपन्यासप्रेमियों ने इसे बहुत पसन्द किया है, इसलिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

वृन्दावन } रसिकानुगामी,
११-८-१६ } श्रीकिशोरीलालगोस्वामी

श्रीः

समर्पण ।

दिव्यादिव्यतर-लोकङ्गता, चिरसौभाग्य-वती, सती-साध्वी-पतिव्रता-पदवाच्या, निज भार्या के चिरस्मरणार्थ यह "सुखशर्वरी" उसीके पुनीत नाम पर हम उत्सर्ग करते हैं।

श्रीकिशोरीलालगोस्वामी—

श्रीमङ्गलमूर्त्तये भगवते नमः ।

सुखशर्वरी.

उपन्यास.

प्रथम परिच्छेद.
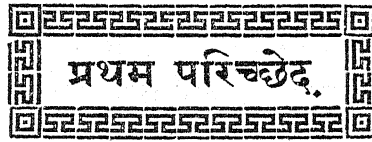
स्मशान ।

"पुरन्दरसहस्राणि, चक्रवर्त्तिशतानि च ।
निर्वापितानि कालेन, प्रदीपा इव वायुना ॥"

(व्यासः)

दो पहर रात थी । गगनमण्डल में चन्द्रमा उदय हुए थे, पर आज उनके किरण की वैसी प्रभा नहीं थी, बरन क्षीण थी। सामने आनन्दपुर और हरिपुर के बीचोबीच स्मशान था । वह विस्तृत,प्रशस्त और निस्तब्ध था। चन्द्र के मन्द प्रकाश में वहां एकआध खजूर वा ताड़ दिखाई देते थे, और आस पास एकआध कनकवृक्ष मात्र थे । मालूम पड़ता था कि दिन में स्मशानवासी वायसगणों के बैठने के लिये मानो खूंटा गाड़ा हो ! रात्रि के समय चिता के अंगारों की ढेरी भयङ्कर मालूम होती थी । कहीं कहीं स्यार के बच्चे सद्यःप्रसूत मृतबालकों को तोड़ रहे थे। चारों ओर सन्नाटा था, और स्मशान की निस्तब्धता भङ्ग नहीं होती थी ।

सहसा गंभीर सन्नाटा मिटा और न जाने कौन बोला,-"बेटी ! अब मैं ज्यादे नहीं चल सकता, यहीं विश्राम कर ।"

यह बात बहुत धीमे शब्द से कही गई, इससे वृद्ध के सूखे कंठ की ध्वनि मालूम होती थी।

अनन्तर किसीने उसकी बातों का उत्तर दिया,—"बाबा यहां ठहरने का काम नहीं है। इस भयानक स्थान को लांघकर हमलोग दूसरा आश्रय पावेंगे।"

यह बात श्मशान की वायु में मिल गई, और यह वयस्का बालिका के कंठ की ध्वनि बोध हुई।

अनन्तर वृद्ध ने कहा,—"मैं अब एक पग भी आगे नहीं चल सकता। बेटी, बैठो यहीं बैठो।"

फिर न जाने किसने कहा,—"जीजी! बाबा जो कहते हैं, वही क्यों नहीं करतीं? मैं भी तो अब आगे नहीं चल सकता।"

यह बात बालक के कण्ठ की सी सुनाई दी।

पाठक! इस बालिका को अभी आप "अनाथिनी" के नाम से जानिए। पिता और भ्राता की बातों से निरुपाय होकर "अनाथिनी" श्मशान ही में बैठी। वृद्ध कांपते कांपते अनाथिनी की गोद में सिर रखकर सो गए।

बालक का नाम सुरेन्द्र था, वह बहिन के बगल में बैठ गया।

पाठक! इन लोगों से आप कुछ परिचित हुए, अब इनका कथोपकथन सुनिए।

बालिका,—"बाबा! इस समय चित्त कुछ अच्छा है न?"

वृद्ध,—"बेटी! मालूम पड़ता है कि एकबार ही अच्छा हो जायगा। ओः! बड़ा कष्ट है! दुष्टों के हाथ से बच कर अब काल के गाल में गिरा चाहता हूं।"

बालिका,—"बाबा! ऐसी बातें न बोलो! सभी ज्वर से परित्राण पाते हैं। तुम अभी रस्ता चले हो, इसीसे ज्यादे कष्ट मालूम होता होगा।"

वृद्ध,—"ठीक है! किंतु बड़ी यातना है। यह यातना मृत्यु-यातना सी बोध होती है। विचारा था कि मित्र के घर जाकर तुमलोगों को सुखपूर्वक रख देंगे। हाय! सो नहीं हुआ चाहता।"

बालिका,—"हा! ये बातें क्यों कहते हो! मन में कुचिन्ता का आन्दोलन मत करो! बाबा! हाथ से पेट सुहरावें?"

इस बेर वृद्ध ने कन्या की बातों पर ध्यान नहीं दिया। वह

अपनी चिन्ता से डूबा था। कन्या और पुत्र कहां जांयगे, मित्र के घर नहीं पहुंच सके। इत्यादि चिन्ता उसके मन में दौड़ रही थी।

थोड़ी देर के बाद उसने दीर्घनिश्वास लेकर धीमे और विकृत स्वर से कहा,—"बेटी—जो—सोचा था—सो—नहीं—हुआ हा!"

बालिका ने आग्रह से पूछा,—"बाबा! क्या सोचा था?"

वृद्ध ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मालूम होता था कि उस समय उसे बोलने की शक्ति नहीं थी। बड़े कष्ट से बालक का हाथ लेकर बालिका के हाथ में पकड़ा दिया और एक बार दोनो की ओर देख कर आंखें मूद्लीं।

बालिका करुणापूर्वक बोली,—"हाय! बाबा मुझे किसके पास छोड़े जाते हो?"

उस समय कदाचित वृद्ध की श्रवणेन्द्रिय प्रबल थी, सुतरां बालिका की कातर ध्वनि का उत्तर न देकर केवल अपना दोनों हाथ वृद्ध ने आकाश की ओर उठाया। मन में दारुण दुःख हुआ और मुंदे नयनों के कोनों से चौधारे आंसू बह चले अभीतक वृद्ध पृथ्वी के मोहजाल में जड़ित था। धीरे धीरे आँसू थम्हे, मायाजाल छिन्न हुआ और वृद्ध का प्राणवायु उड़ गया!

निश्वास के रुकने से बालिका ने जाना कि पिता परलोकगामी हुए! तब बहुत सोच बिचार कर अपनी गोदी से उनका मस्तक उठाकर पृथ्वी पर रख दिया। बालक वृद्ध की मृत्यु का हाल कुछ नहीं जानता था, वहीं बहिन के पास ही बैठा था।

न जाने क्या सोच समझकर वह बोला,-"जीजी! बाबा तुम से क्या कह गए हैं? कुछ देने के लिये?"

बालिका उस समय चुपचाप रो रही थी, इस लिये उसने भाई की बातों पर कान नहीं दिया; इससे बालक कुछ क्रुध होकर बोला,—"मैं बाबा को उठा कर अभी पूछता हूं।"

यह कहकर बालक मृत पिता के समीप आकर जोर से पुकारने और उन्हें हिलाने लगा बोला,—"बाबा बाबा! जो तुम कह गए हो, सो जीजी न देती हैं, न बोलती हैं।"

पिता न जागे और न उन्होंने कुछ उत्तर दिया। यह देखकर बालक क्रुध होकर कहने लगा,—"उठते क्यों नहीं बाबा? मुझे बड़ा डर लगता है। न उठोगे तो मैं छुरी से अपना हाथ काट डालूंगा।"

वृद्ध जो इस मायाभूमि को छोड़ कर चला गया था। इस बात को बालक नहीं जानता था। सो पिता से उत्तर न पाकर रोनी सूरत बनाकर बहिन से कहने लगा,—"देखो जीजी! कितना पुकारा, पर बाबा नहीं उठते।" बालिका ने सोचा कि यह बात छिपनेवाली नहीं है! अन्त में प्रकाश होही जायगी। इस लिये पत्थर सा कड़ा कलेजा करके बड़े दुःख से कहा,—"भैया सुरेन्द्र! पिता अब न जागेंगे, न कुछ बोलेंगे। वे सदा के लिये इस लोक को छोड़कर परलोक सिधार गए।"

कहते कहते आंखों से आंसू बहने लगे और करुणा से कण्ठ रुद्धहोगया।

बालक,—"जीजी! झूठ कहती हो, बाबा कहां चले गए हैं? यह देखो बाबा तो सो रहे हैं!"

बालिका,—"यह केवल देहमात्र है, प्राणपखेरू तो देहपिञ्जर छोड़कर उड़ गया। यह पिशाचिनी निद्रा कभी भंग न होगी; अतः जो जा कर न आवै, वही मृतक कहाता है।"

बालक,—"जीजी! मर क्या गया? मरा हुआ आदमी क्या फिर नहीं आता?"

बालिका,—"भाई! जानते नहीं? वह जो नन्हू की माँ मर गई, सो क्या फिर कर आई? उसी तरह तुम्हारे पिता भी अब न फिरेंगे।"

बालक,—"सोतो मालूम है, किन्तु सुनते हैं कि नन्हू बड़ा धूम करता था, इसीसे उसकी मां मर गई। पर हम लोगों ने क्या किया, जो बाबा मरगए?"

बालिका,—"हमलोगों ने क्या किया, भाई! जो कुछ किया, सो हमलोगों के अदृष्ट ने।"

तदनन्तर बालिका ने स्नेहपूर्वक अपने छोटे भाई को गले से लगा लिया और उसे गोदी में लेकर स्मशान के चारो ओर कुछ खोजने लगी। थोड़ी दूर पर एक धोई हुई चिता के पास बहुत से काठ के टुकड़े पड़े थे। धीरे धीरे उन्हें इकट्ठा कर के बड़ी निपुणता के संग चिता सज कर उस पर पिता का मृत कलेवर रख, चकमक से आग निकाल, अग्नि [illegible] एक लेकर

अपने हाथ से पिता के मुख में प्रदान किया। हा! जो मुख अमृत बरसाता था, उसमें आज अपने हाथ आग लगाना पड़ा। 'अब चिन्ता करना वृथा है, पिता तो आवेंगे नहीं, और संस्कार अवश्य करना चाहिए;' यह बिचार कर बालिका ने चिता में भयानक अग्नि लगा दी।

अग्नि ने जब धह-धह शब्द करके मृत देह को भक्षण करना प्रारंभ किया तो न जाने किसने स्मशान में से कहा,—" अनल! तुम्हारी सर्वदाहक क्षमता हम जानते हैं। क्षणभर अपनी चाल रोको। एक बेर हमें पिता का मृत कलेवर स्पर्श कर लेने दो।"

यह वाक्य किसने कहा? उसी बिचारे अनाथ बालक ने। पर अग्नि ने कुछ भी नहीं सुना, देखते देखते वृद्ध का पाञ्चभौतिक शरीर भस्म में परिणत हुआ। हवा जोर से बहती थी, किन्तु जिस ओर " अनाथिनी " बैठी थी, ठीक उसके विपरीत दिशा में वायु की गति थी और बालिका की ओर भस्मराशि वा अग्नि का उत्ताप नहीं आता था, इससे बालिका ने विचारा कि, 'भस्म हुए पिता का अभी तक इतना स्नेह है! हा वे पिता कहां हैं?'

बालक अभी तक चुप था। अब न जाने क्या सोच समझ कर बोला,—" जीजी, अब बाबा कहां गए?"

बालिका बिचारी क्या उत्तर देती? अन्त में सोचकर बोली,— " स्वर्ग में। "

बालक,—" कैसे स्वर्ग में जाना होता है? क्या आदमी मरने ही से स्वर्ग जाता है? "

बालिका,—" अच्छा काम करने से स्वर्ग मिलता है। "

बालक,—" क्यों जीजी! हमलोगों को इस जनशून्य जंगल में—नहीं नहीं स्मशान में छोड़कर बाबा चले गए; यह क्या उन्होंने अच्छा किया? "

बालिका,—" इसमें उनका दोष नहीं, बरन हमलोगों के भाग्य का है। "

बालक,—" जीजी! मार्ग में जो जो बातें बाबा ने कही थीं, वे तो एक भी न हुईं! अब हमलोग कहाँ जायंगे? कौन आश्रय देगा? "

बालिका,—"भाई! दयामय जगदीश्वर को छोड़ और हमलोगों

का कौन रक्षक है ? वे जहां लेजायंगे, वहीं जायंगे।"

यह बात सुनकर बालक सन्तुष्ट होगया। अनाथिनी ने पहले विचारा कि, 'सवेरे कहां जायँगे, किसके दरवाजे खड़े होंगे, क्या करेंगे ?' अनन्तर हृदयभेदी चिन्ता दुःखभाराक्रान्त हृदय में स्थान न पाकर स्फुट स्वर में व्यक्त हुई,—

बालिका ने कहा,—" अहा ! चिता में कूद कर प्राण त्याग करती तो यह दुःख न भोगना पड़ता, और अनन्त काल के लिये सुख होता।"

बालक ने समझ कर धीरे से कहा,—" क्यों बहिन ! तुम इस तरह क्यों सोचती हो ? अभी तो तुमने कहा है कि, 'दयावान जगदीश्वर हमलोगों के रक्षक हैं,' तो क्या यह बात मिथ्या है ? जो ऐसा हो तो फिर एक चिता जलाओ और उसीमें कूद कूद कर हमलोग अनन्त शान्ति को पावैं और पिता से मिलैं।"

बालिका प्रबल शोक सम्वरण करके बोली,—" भाई ! ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए; जगदीश्वर अवश्य ही रक्षा करेंगे।"

बालक,—" अच्छा तो अब न कुछ भय करूंगा, न कहूंगा ! पर हमलोगों को आहार कौन देगा ?"

बालिका,—" भय क्या है ? जो सबको आहार देते हैं, वे हमलोगों को भी देगें ! और कुछ उपाय न होने से भीख मांग कर मैं तुम्हें खिलाऊँगी।"

बालक,—" क्यों जीजी ! जैसे मेरे घर बहुत से भिक्षुक आया करते थे, वैसे ही तुम भी दूसरों के घर जाओगी ! पर मैं तो अकेले न जाने दूंगा, मैं भी तुम्हारे संग चलूंगा, किन्तु न जाने क्यों, मुझे बड़ी रुलाई आती है !"

बालक के वाक्य ने बालिका के गंभीरतम हृदय में आघात किया। वह दोनों हाथ उठाकर दयामय ईश्वर का स्मरण करने लगी। धीरे धीरे निशादेवी अपना घूंघटपट खोल कर अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई और प्रभात की प्रभा चारो ओर फैलने लगी। श्मशान में वहांके अधिवासी पशुपक्षियों की कलकलध्वनि सुनाई देने लगी।

द्वितीय परिच्छेद

कुटीर ।

"अपवादादभीतस्य, समस्य गुणदोषयोः ।
असद्वृत्तेरहो वृत्तं, दुर्विभाव्यं विधेरपि ॥"
(भारविः)

सन्ध्या होनेवाली थी और आकाश सघन-मसीमयी जलदमाला से ढका था। अभीतक प्रचण्ड बायु बहती थी, पर अब मेघमण्डल को एकता के सूत में बंधे देख भय से अपनी प्रचण्डता कम करने लगी। मेघमाला शत्रु को बश में करके हँसी, वही हँसी चंचला की छटा थी। मेघ के हास्य को देख कर प्रचण्ड बायु तिरस्कार के छल से गरज उठी, फिर हँसी थम्ही और तिरस्कार भी रुका। मेघमण्डल मानो अपना दोष स्मरण कर अनुतप्त हो रोने लगा, वही अश्रु-बिन्दु प्रबल बारिधारा में परिणत होकर बरसने लगी। रोते रोते बायु की अवश्यता याद करके मेघगण बीच बीच में, हँसते भी थे और रह रह कर बज्रगंभीर गर्जन भी करते थे, समय भयङ्कर और दुर्गम था।

बिजली के आलोक में सामने एक सरपट मैदान दिखाई दिया। यह स्थान पूर्वोक्त स्मशान से दो कोस उत्तर की ओर था। प्रान्तर के एक ओर कल्लोलवाहिनी भागीरथी बहती थी। वहांके बृक्षों के पत्तों के ऊपर वर्षाविन्दु पड़ापड पड़ती थी। बराबर वृष्टि ने बृक्ष के वासी पक्षियों को बड़ा कष्ट दिया था, इससे वे कलरव कर रहे थे, किन्तु सभोंका शब्द वृष्टि के वर्षाकर शब्द से मिल गया था। भला, नगारखाने में तूती की आवाज कभी सुनाई देती है!

सहसा उस प्रान्तर में, "आह! कहीं पर ऐसी जगह नहीं मिलती, जहां आश्रय लूं!" इस प्रकार सकरुण आर्तनाद सुनाई देने लगा। यह भयंकर ध्वनि वृष्टि के तुमुल शब्द में नहीं लीन हुई, बरन बहुत दूर तक तैर गई। इस पर प्रान्तर की दूसरी ओर

से, " इधर आओ बेटा ! " यह शब्द तीर की तरह छूटा हुआ आया। यह ध्वनि आश्रय चाहनेवाले के कानों में गई। उस समय पथिक चारोओर देखने लगा। विद्युत्प्रकाश में दिखाई दिया कि, 'पास ही वृक्षों की बारी से घिरे हुए एक कुटीर में से दीपक का थोड़ा थोड़ा उँजाला आ रहा है। इसी प्रकाश को लक्ष्य कर के बड़े कष्ट से पथिक वहां पहुंचा, और प्रकाश के समीप पहुंच कर उसने देखा कि, 'एक सुन्दर कुटीर है! उसके बाहर का भाग वृक्षों से घिरा हुआ है, और द्वार पर एक वृद्धा बैठी चर्खा कात रही है।'

वृद्धा ने पथिक को देखकर आह्लाद के संग कहा,—"बेटा! मेरी आवाज तुमने सुनी थी न। बैठो, बेटा! बैठो।"

पथिक आश्रय पाकर हर्ष से बुढ़िया के पास बैठ गया, वृद्धा चरखा कातना बन्द करके पथिक के संग वार्तालाप में प्रवृत्त हुई!

वृद्धा,—"तुम्हारा घर कहां है, भाई! और नाम क्या है?"

पथिक,—"मेरा घर मिहरपुर है, और नाम मनसाराम है।"

वृद्धा,—"यह लम्बा-चौड़ा नाम-गाम रहने दो! मैं भैया-बच्चू कहकर पुकार लूंगी। भला, इस आंधी-पानी में कोई घर के बाहर निकलता है? कहांसे आते हो? और अब तक कहां रहे?"

पथिक " हां आं आं " यह कहकर अपने मन में विचारने लगा,—"व्यर्थ अबतक इधर उधर भटकता था! जिसे खोजता था, उसने स्वयं ही पुकार लिया।"

वृद्धा,—"अच्छा बेटा! तुम क्या मुसलमान हो? कितने दिनों से फकीरी करते हो?"

पथिक,—"हां, ठीक—बीस वर्ष से।"

वृद्धा,—"अच्छा, रोज खाने भर भीख मिल जाती है?"

पथिक,—"नहीं माई, इसका कोई ठिकाना नहीं है, 'सब दिन नाहीं बराबर जात'–किसी दिन ज्यादे मिलता है, किसी दिन कम।"

वृद्धा,—"आज कहां गए थे। और क्या मिला?"

पथिक,–"आज आनन्दपुर गए थे, पर कुछ विशेष नहीं मिला।"

इसी समय एक बालक कुटीर के भीतर से आकर बोला,— " क्यों! मां! यह पानी कब खुलेगा रे?"

हमलोगों का परिचित सुरेन्द्रकुमार है।

वृद्धा ने बालक को गोदी में लेकर कहा,—"हां ! बेटा ! पानी बरसने से क्या तुम्हें कुछ कष्ट होता है ?"

"अब पानी खुलेगा" यह कहकर फकीर ने वृद्धा से पूछा कि, "यह बालक किसका है ?"

वृद्धा ने हँसते हँसते कहा,—"अब यह मेरा बालक है।"

फकीर ने आग्रहपूर्वक पूछा,—"तुम्हारा "अब" शब्द सुनकर मेरा कुतूहल बढ़ गया !"

वृद्धा,—"तो सुनो, तुमसे सब बात कहती हूं—यह बालक सचमुच मेरा नहीं हैं, प्रायः पांच चार दिन हुए कि प्रातःकाल के समय इसकी बहिन इसे संग लेकर रोती रोती आश्रय ढूंढ़ने के लिये यहाँ आई। मैंने उससे सब बातें पूछीं। सुनने से बड़ा दुःख हुआ। इसीलिये उसके दुःख से दुःखित होकर, यहीं आश्रय दिया। तबसे ये दोनों यहीं रहते और मुझे मां कहते हैं।"

पथिक,—"तुमने उससे क्या पूछा था ?"

वृद्धा,—"यही कि, 'बेटी तुम क्यों रोती हो' ?"

पथिक,—"उसने क्या कहा ?"

वृद्धा,—"हां भाई ! आते आते मार्ग में उसके पिता का परलोक हुआ। अपना-पराया कोई न रहने से वह रोती थी।"

पथिक,—"हा ! बड़े दुःख की बात है! ये लोग कहांसे आते थे ?"

वृद्धा,—वहीं से तो—ऐं—हां ठीक याद पड़ा, हरीपुर से ! तुम बेटा हरीपुर जानते हो ?"

पथिक,—"आंख से तो नहीं देखा है, किन्तु नाना की बूआ की चाची के मुख से सुना था। ये लोग क्यों आते थे ?"

वृद्धा,—"वहाँ के जमीदार के अत्याचार से।"

पथिक,—"कौन अत्याचार ?"

वृद्धा,—"देखो बेटा ! हरीपुर के जमीदार को लड़काबाला नहीं है, वह बलात् इसी बालक को दत्तक लिया चाहता है।"

पथिक,—"या अल्लाह ! हमलोगों का कहां ऐसा भाग है कि अपना बालक न होने से दूसरे का लड़का लेकर सुख उठावें ! हां इसके बाद ?"

वृद्धा,—"अनन्तर भयानक अत्याचार से घबड़ाकर रातोंरात

लड़का-लड़की को संग लेकर इसके बाप घर से भागे थे; पर मार्ग में आते आते उनकी मृत्यु हुई ।"

पथिक ने अपने मन में कहा,—"बस अब कहां जाता है ! वह मारा !!!" फिर प्रगट में बुढ़िया से बोला,—"हां ! ये लोग जाते कहां थे ?"

वृद्धा,—"यह बात यह नहीं जानती । कदाचित् वे कोई मित्र के घर जाते थे । क्यों बेटा ! धनिकों को दूसरों पर दया नहीं आती ?"

पथिक,—"यह बात क्योंकर कहूं, सदा से तो दुःख भोग रहा हूं ।"

वृद्धा,—"हां भाई ! ठीक ही तो है ! हम-दरिद्रों के पास क्या धरा है ? तो भी दया-मया जानती हूं । किसीका बुरा नहीं चेतती; और देखो न ! उस बूढ़े बिचारे का बालक देखकर जमोदार की आंख इसी प्रर गड़ गई !"

पथिक,—"तुम्हें खूब दया-मया है ! भाग्यों से तुम्हारा आश्रय मिला, इसीसे प्राण बचे । अबतक मैं तुम्हारे इस चर्खे को तरह घूम रहा था । अच्छा ! अल्लाह के फजल से लड़का जीता रहेगा ।"

वृद्धा,—"ठीक कहते हो, बेटा ! ठीक है ! कुछ जंतर-मंतर दे सकते हो, जिसमें यह अच्छा रहे !"

पथिक,—"हाँ हां ! जब सबेरे जाऊंगा, तब तुम्हें कुछ दे जाऊंगा ।"

वृद्धा ने संतुष्ट होकर पथिक को फल मूल आदि आहार देकर अतिथिसत्कार किया । पथिक भोजनों को आत्मसात् करके सोचते बिचारते सोगया ।

अब जल-वायु भी शान्त हुई थी । मण्डूकों की "टर्रकों टर्रकों" वाली कर्कश ध्वनि कानों में आने लगी और जल का "कल-कल" शब्द सुनाई देने लगा । धीरे धीरे वृष्टि थमी । अब शृगालों का कर्कश शब्द गगनस्पर्श करने लगा ।
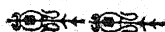
तृतीय परिच्छेद.

भग्नगृह।

"दैवे विमुखतां याते, न कोऽप्यस्ति सहायवान्।
पिता माता तथा भार्या, भ्राता वाथ सहोदरः॥"

(व्यासः)

वृद्धा, अनाथिनी बालिका और बालक सुरेन्द्र उस ठण्ढी और गम्भीर निशा में निद्रित थे। धीरे धीरे निशादेवी का राज्य लुप्त होगया। कुटीर के भीतर शीतल, मन्द, सुगन्ध, समीर जलकण लिये मृदु मृदु चालों से अनाथिनी बाला को आकर स्पर्श करने लगा। अभी हम इस दुःखिनीबाला को अनाथिनी ही कहेंगे। उसने उठकर जो देखा, उससे वह बहुत स्तम्भित और चिन्तित हुई! उसने देखा कि, 'सुरेन्द्र नहीं है और पथिक का भी कुछ पता नहीं है!' बिचारी बाला घबड़ा कर आर्तनाद करने लगी। उसके रोने से वृद्धा भी उठ बैठी और सारा हाल सुनकर महादुःखित हुई। इस समय कुटीर में सूर्य्यरश्मि धीरे-धीरे आ रही थी।

अनाथिनी अनाथिनी की तरह रोने लगी। वृद्धा ने उसे बहुत समझा बुझाकर अपने जाने हुए गावों में बालक को खोजने के लिये प्रस्थान किया। अकेली बालिका क्या करती? बड़ी चिन्तित हुई।

उसने बिचारा कि, एक दुःख के ऊपर दूसरा दुःख क्या अवश्य होता है? हा! पिता की मृत्यु और भ्राता की चोरी! पिता ने मरते समय मेरे हाथ में सुरेन्द्र का हाथ पकड़ा दिया था। पिता तुम्हारी आत्मा इन बातों को देख कर न जाने मुझे कैसी कृतघ्न कहेगी? मैं क्या करूं? मैं निःसहाय और सामान्य बालिका हूं।"

अनाथिनी ने इसी तरह सोचते सोचते अपनी गठरी खोली। दो एक मैले वस्त्र निकाले, फिर न जाने क्या देख कर सहसा

उसकी चिन्ता दूर हुई। उसने देखा कि, 'कपड़े के भीतर एक पत्र पड़ा है! आग्रह से उसे उठा लिया, और देखने से शोकराशि बढ़ गई। उसने सोचा, 'एँ! यह पत्र किसका है? मेरे पिता का?' फिर मन में दो एक बेर उसे पढ़ा, पर चित्त के न मानने से पुनः धीरे धीरे पढ़ा, पत्र यही था,—

"महाशय!

"आपका पत्र पाकर बहुत दुःखित हुआ, किन्तु अत्यन्त सन्तुष्ट भी हुआ। रामशङ्करबाबू का अत्याचार तो मेरे दुःख का कारण हुआ, पर अनुग्रह-पूर्वक आपका यहां आने का प्रस्ताव मेरे सुख तथा हर्ष का हेतु हुआ। जन्मभूमि में जो शत्रु लोग बहुत बढ़ जांय, तो उस प्यारी भूमि को भी छोड़ ही देना चाहिए। आप जो यहां आने में संकोच न करेंगे तो मैं अतिशय बाधिक होऊँगा। मुझे आप अपने छोटे भाई की तरह जानिए। आप हमलोगों के मान्य और शुभाकांक्षी हैं। आपकी आन्तरिक इच्छा मैंने समझी, वह यहां आने पर यथासमय सम्पन्न होगी। आपने लिखा कि,—'दरिद्र व्यक्ति की कन्या के सहित संभ्रान्त पुरुष के पुत्र का विवाह किस प्रकार संभव है?'—यह तीखी बात फिर न सुनूं तो नितान्त अनुगृहीत होऊँगा। पत्र पाते ही बालिका और बालक के संग अवश्य पधारिए।

वशंवद,
श्रीहरिहरशर्म्मा।

पत्र को पढ़ कर अनाथिनी ने क्या सोचा? पिता का विषय!

एक बेर यह पत्र इसके पिता के आनन्दाश्रु से आर्द्र हुआ था, आज बालिका के कोमल नेत्रों के हर्ष-विषाद-मय आंसुओं से भींगा!

अनाथिनी ने अनिर्मेष-नयनों से पत्र को बारबार देखा, फिर धीरे धीरे मोड़ कर अँचल में बांध लिया। फिर खोला, फिर पढ़ा, और फिर बांध लिया।

अनाथिनी मन में सोचने लगी कि, 'संसार में मेरे पिता के एकमात्र मित्र हरिहरबाबू ही हैं, पर उनका घर कहां है?'

'मेरा क्या विवाह!' उन्होंने लिखा कि, 'बालक-बालिका के संग आना! हा! भैया सुरेन्द्र कहां है? पिता तो स्वर्ग गए!'

यों सोचते सोचते वह कुटीर के बाहर आई।

प्रायः दोपहर होगया था, किन्तु आकाश अभी तक मेघाच्छन्न था; इससे सूर्य्य के किरण की तेजी नहीं थी। सहसा कुटीर छोड़कर जिधर मुंह पड़ा, उसी ओर अनाथिनी जाने लगी। किस लिये? छोटे भाई के खोजने को।

बालिका के मन में निश्चय था कि, 'मैं अपने भाई को खोज लूंगी।' कुछ दूर जाने पर एक तिरमुहानी मिली। तीनों पथ लोगों के आने जाने बिना प्रायः असंस्कृत हो रहे थे। एक पथ में कीचड़ होने से कई मनुष्यों के पैर के चिन्ह उखड़े थे। बालिका ने देखकर वही पथ पकड़ा। वह कहां जाती है, इस पथ का कहां अन्त है, इसका कुछ ठिकाना नहीं। जाते जाते अनाथिनी एक सघन बन में पहुंची। असंख्य वृक्षराजि, अनन्त फूल-फल, अनेक पशु-पक्षी, और अशेष प्राकृतिक शोभा की रमणीयता से बन शोभायमान था। अनाथिनी को देखकर पशु-पक्षी भागने लगे। यह देख उसने मृदु स्वर से हँसकर आप ही आप कहा,—"मुझसे क्यों डरते हो?" एक सुन्दर पुष्करिणी के निर्मल जल में जलचर कलोल करते थे। वृक्षों की शाखाओं की एकता से उस बन में सूर्य्य की किरण नहीं घुसने पाती थी। बालिका खड़ी हो बन की शोभा देखने लगी। अन्त में एक वृक्ष-कोटर में दो बिल्ली के बच्चों को क्रीड़ा करते देख उसने दीर्घनिश्वास त्याग करके कहा,—"इस समय भ्राता कहां है?" उसके मन में बहुत कष्ट हुआ और वह इधर उधर टहलने लगी। कुछ दूर आगे जाने पर मनुष्य का पदचिन्ह दिखाई दिया। उसके मन में आशा हुई और कई कदम आगे जाकर कुछ देखकर वह बड़ी बिस्मित हुई! उसने देखा कि, 'एक वट-वृक्ष में जीर्ण-शीर्ण घोड़ा बँधा है!' अनाथिनी ने सोचा कि, 'यह अश्व किसका है और कहां से आया?' क्यों कि वह जिस पथ से आई थी, वह यहीं समाप्त होगया था। अश्व की ओर से आँख फेर कर सामने क्या देखा कि, 'एक पक्का मकान है, किन्तु भग्नप्राय होरहा है!' तब तो अनाथिनी डरी। अनन्तर भाई के खोजने की अभिलाषा ने भय को दूर किया। आशा से हृदय पूर्ण करके बालिका उस घर के आंगन में जाकर प्रेमावेश से उन्मत्त होकर हठात् "सुरेन्द्र सुरेन्द्र!" कहकर जोर से पुकारने

लगी। उस चिल्लाहट को प्रतिध्वनि ने भीषण स्वर से उत्तर दिया। प्रतिध्वनि होने के पीछे ही, "भागो! भागो! यहां क्यों प्राण देने आई हो?" ये शब्द अनाथिनी के कानों में गए। बालिका डर के मारे चारोंओर देखने लगी, अन्त में ऊपर एक खिड़की में अपूर्व और अकथनीय मुख दीख पड़ा।

उस मुखच्छबि से मोहित होकर बालिका ने कहा,—"ऐं! आप मुझे यहांसे भागने के लिये क्यों कहते हैं? क्या यहां कोई भूला-भटका बालक आया है?"

अपरिचित,—"मैं कौन हूं? एक अभागा आदमी। यह भग्नगृह एक दुर्दान्त कापालिक का बासस्थान है, सुतरां तुम अपनी जान लेकर अभी भागो। यहां न कोई बालक आया, और न मैंने देखा।"

बालिका,—"आप अभागे क्यों हैं? और दुष्ट कापालिक के हाथ कैसे पड़े?"

अपरिचित,—"हा! क्या कहूं?"

यह कहकर उसने मन में कहा,—"कुछ दिनों के बाद एकबार ही जीवन का दीप निर्वाण होगा, तब बिपद के छिपाने से क्या प्रयोजन है?"

बालिका स्थिर नेत्रों से युवक का मुख देखने लगी। अपरिचित युवा, चंचलनयनी कुतूहलाक्रांत बाला के संशय दूर करने के लिये अपना वृत्तान्त कहने लगा।—वह बोला,—"एक दिन सन्ध्या के समय मैं किसी कार्य्य के लिये घोड़े पर चढ़कर इसी पथ से दूर किसी ग्राम की ओर जाता था। उस समय भयानक आंधी उठी और संग ही मूसलधार पानी भी बरसने लगा। अश्व की गति रुकने से निरुपाय होकर आश्रय लाभ की आशा से मैंने इस घर में प्रवेश किया। रात्रि अंधेरी थी और आगे चलने की सामर्थ्य नहीं होती थी। शरीर भी परिश्रान्त हो रहा था, अतः सोच बिचार कर यहीं बिश्राम किया। धीरे धीरे निद्रा आगई। प्रातः काल जाग कर देखा कि, 'मैं नरघाती कापालिक के हाथ बन्दी हूं'।"

बालिका ने युवक की बात सुनकर दीर्घनिश्वास त्यागकर कहा,—"आपकी दुःख-कहानी सुनकर छाती फटी जाती है। हा! मैं क्या कुछ भी आपकी सहायता नहीं कर सकती हूं? कहिए? वह दुःखदायी शत्रु अभी कहां है?"

युवक,—"समीपवर्त्ती बन में तंत्र साधन करता होगा ! हा ! उसने कितनों का सर्वनाश किया होगा ।"

बालिका,—"आइए न ! इसी समय चुपचाप हम दोनो जने भाग चलैं ।"

युवक,—"सरलहृदये ! मेरे हाथ पैर शृङ्खला से बँधे हैं । मैं हिलने डोलने में संपूर्ण अक्षम हूं । अब तक अंधेरे में बैठा बैठा बड़ी चिन्ता में डूबा था । सहसा तुम्हारा कोमल स्वर कानो मैं गया और मैंने तब सोचा कि कोई अनाथिनी अबला कदाचित् फिर पापी कापालिक के पाले पड़ी होगी वा पड़ेगी; इसीसे तुम्हें सावधान करने के लिये बड़े कष्ट से खिड़की के पास तक सरक सरक कर आया । हा—"

युवक ने दीर्घनिश्वास लिया और बालिका ने साहस से कहा,—"तो मैं आकर आपकी बेड़ी और हथकड़ी छुड़ा दूं ?"

युवक,—"कोमलहृदये ! देखो ! आगे न बढ़ो ! इस कारागार के द्वार का भारी ताला तोड़ना तुम्हारा काम नहीं है, वह काम दुःसाध्य है । मेरे जीवन के लिये अपना जीवन उलझाव में न फसाँओ । ओः ! जान पड़ता है कि सूर्य्य अस्त हुए, शीघ्र ही कापालिक आवैगा, भागो ! वृथा बातों में समय बीत गया, जल्दी भागो ।"

यों कहकर युवा ने मन में कहा,—"सब बात ही गुप्त रही ! रे मन ! एकाएक द्वार बन्द कर ! स्मरणशक्ति ! विलुप्त हो ! क्या आत्मपरिचय दूं ? इससे क्या उद्धार होगा ? नहीं; तो फिर प्रयोजन नहीं है; कापालिक आता होगा ।"

प्रकाश्य में कहा,—"कापालिक आता होगा, तुम भागो, भागो, जल्दी भागो !"

"आपने मुझे जीवनदान दिया, और मैं आपका कुछ उपकार न कर सकी, ईश्वर आपका मंगल करे ।" यह कहकर रोती रोती अनाथिनी बिदा हुई और डरती डरती अपनी कुटीर की ओर चली ।
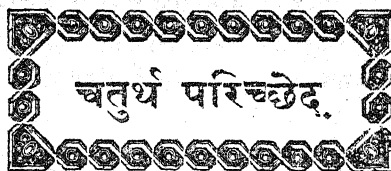
भागीरथी तट।

" किमत्र चित्रं यत्सन्तः परानुग्रहतत्पराः।
न हि स्वदेहशैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः॥ "

(कालिदासः)

अनाथिनी भग्नगृह से निकल कर जाती थी कि उसके कानों में यह भयानक शब्द,—'मा कात्यायनी! कब मैं नरबलि देकर निश्चिन्त होऊँगा?'—बज्र सा सुनाई दिया। बालिका दौड़कर उसी अश्व के पीछे जा लुकी और आड़ में से देखने लगी कि, 'पशुचर्म को पहिरे, नरकपाल हाथ में लिये, भयानक रूप बनाये, पर्वताकार कापालिक उस भग्नगृह में घुसा!' यदि अनाथिनी क्षण भर भी वहां और बिलम्ब करती तो जरूर कापालिक के हाथों पड़ती। बालिका के कानों में कात्यायनी का नाम अमृत सा लगा, परन्तु कापालिक का जघन्य और हत्यारा रूप देख कर वह कांप उठी। कापालिक के घर में जाते ही भय से अनाथिनी वहांसे भागी तो सही, पर भय से जल्दी जल्दी पांव नहीं उठते थे। जैसे स्वप्न में कोई आदमी भय के मारे भागने की चेष्टा करता है, पर उसका पैर नहीं उठता; उसी प्रकार अनाथिनी की दशा हुई। रह रह कर पीछे फिर कर वह देखने लगी, और पत्रों के मर्मर शब्द से उसका कलेजा कांपने लगा। वह प्राणपण से दौड़ती दौड़ती पूर्वोक्त तिरमुहानी पर आ गई। अब आशा हुई कि प्राण बचेंगे, पर साथ ही भाई की चिन्ता ने चित्त चञ्चल कर दिया। उसने सोचा कि, 'कोई काम भी नहीं सुधरा।' इत्यादि नाना चिन्ता करती करती वह आगे चली। कुछ दूर जाकर उसने देखा कि, 'किसी घर में आग लगी है!' परन्तु पास जाकर देखकर स्तम्भित हुई, क्योंकि वह आग बुढ़िया की कुटी में लगी थी! हाय! किसने अनाथिनी के सामान्य आश्रय को फूंक दिया? अब उस बाला

की क्या दशा होगी? पिता के वियोग पर अनाथिनी उस वृद्धा के आश्रय से स्वस्थ हुई थी, उसका अपत्यस्नेह देख कर अपना दुःख भूल गई थी, भाई के खो जाने पर भी बुढ़िया के समझाने से कुछ शान्त हुई थी; किन्तु हा! अब शान्ति देनेवाली कुटीर भी नहीं है, और आश्वासन देनेवाली बुढ़िया भी नहीं है! हा! अनाथिनी की क्या दशा होगी?

पाठक! सुरेन्द्र की खोज में वृद्धा गांवों में गई थी, पर भाग्यों से हो वह इस समय यहां नहीं थी; नहीं तो भस्म होजाती। अब बालिका को ढाढ़स कौन दिलावै? अनाथिनी ने समझा कि, 'किसी दुष्ट ने हमलोगों को भस्म करने के लिये ही इस कुटीर में आग लगाई होगी।' इत्यादि सोच कर रोती रोती वह समीपवर्त्ती गङ्गा के किनारे जा बैठी। रात्रि का समय था, पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र मन्द मन्द हंसता था, और स्वच्छ चाँदनी में टूटी फूटी सोपानावली दिखाई देती थी।

बालिका एक साफ सीढ़ी पर बैठ, दीर्घनिश्वास लेकर कहने लगी,—" सब आस मिटी! अब क्या? भाई की चोरी, उसका न मिलना; हा! क्या वह फिर मिलैगा? सो तो नहीं हुआ! दो पहर के समय मेरे हृदय की तरह आकाश मेघाच्छन्न था, पर अब तो रजनीपति के प्रभाव से सघन-घनघटा अन्तर्धान होगई है; पर मेरी हृदय की मेघराशि किस आशा से छिन्न-भिन्न होगी? जब भाई की खोज में गई थी, तब मेरे मन में बड़ा दुःख होरहा था, किन्तु आशा का मन्द मन्द दीपक बलता था, पर इस समय? अब तो आशा का दिया एकाएक बुझ गया, दुःख गाढ़तम होगया। पूर्णचन्द्र! तुम्हारे उदय होने से मन पहिले कैसा हर्षित होता था, किन्तु इस समय तुम्हारी कोमल किरण देखने से जरा भी आनन्द नहीं होता, वरञ्च मर्मभेदी दुःख और शरीर में दाह पैदा होती है। चित्त चाहता है कि अब तुम्हारा मुंह न देखूं, अंधेरे में दिन बिताऊं। हा! उस सुन्दर युवा को क्यों नहीं अंधेरे घर से उद्धार किया? अहा! कैसी मनोहर मूर्त्ति थी? पर शरीर दुर्बल और अंग श्रीहीन होगया था। हाय! लौटने के समय उस जर्जर अश्व ही को क्यों नहीं बंधन से छुड़ाया? मैं संसार में जन्म ले कर किसीका भी उपकार न कर सकी। हाय!

न जाने इस समय कैसा मन होगया है! हा!!!"

चिन्ता से भरी बालिका सीढ़ी उतर कर नीचे की सीढ़ी पर आगई। गङ्गा की कैसी शोभा है? पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की प्रभा से प्रतिभात होकर जान्हवी का पवित्र जल चमचम करता था; मानो हँस रहा हो! बड़ा आल्हाद!! जलकण लिये शीतल समीर सनसना रही थी, और रह रह कर जल की तरङ्गों में आघात करती थी।

अनाथिनी ने बहुत देर तक चिन्ता करके आप ही आप कहा,—"गंगा मैया! अभागी लड़की का निवेदन सुनोगी?" सरसर शब्द से वायु ने मानो पूछा,—"क्या?" जैसे प्रार्थनाकांक्षिणी कन्या प्यारी माता के पास किसी चीज को मांगती है, वा कोई गुप्त रहस्य प्रकाश करती है, उसी तरह अनाथिनी ने गङ्गाजी की ओर सिर झुका कर बड़ी करुणा से कहा,—"मां! दया करके अभागिनी बेटी को क्या अपनी गोदी में लोगी?"

उस समय जोर से हवा चली, गंगा में एक पर दूसरी तरङ्ग टक्कर मारने लगी, मानो भागीरथी अनाथिनी की बात सुनकर रुष्ट हुई। बालिका अपनी प्रार्थना सुनाकर न जाने क्या सोचने लगी, फिर बोली,—"मां! यदि मेरा हृदय कोमल न होता तो बलपूर्वक तुम्हारी गोदी में सोती। क्यों बिधाता ने सरल हृदय बनाया? कर्म में इतना दुःख लिखा, तो हृदय पत्थर सा क्यों नहीं बनाया? नहीं तो आज तुम्हारे उदर में प्रवेश करके सब दुःख को एक दम भूल जाती और शान्ति पाती। जान पड़ता है कि पहिले जन्म में मैंने बड़ा पाप किया था, उसीके फल भोगने के लिये बिधाता ने मेरे भाग्य में इतना दुःख लिखा है, अर्थात् मेरा हृदय कोमल बनाया है। मां! सुना है कि तुमने सैकड़ों मनुष्यों का उद्धार किया है, तब निःसहाय अबला कन्या पर क्यों नहीं दया होती? मां! जब मैं सो जाऊं तो मुझे वायु के सहारे से अपनी गोद में ले लेना।"

बालिका ने रोते रोते चन्द्रमा की ओर देखकर कहा,— "निशाकर! क्या तुम भी अभागिनी पर दया न करोगे? प्रिय! तुम जल्दी अस्त मत होना, नहीं तो सूर्योदय होने पर मैं किसके द्वार पर खड़ी होऊंगी?"

बिचारी बालिका रोते रोते सब दुःख दूर करनेवाली निद्रा की गोद में लेट कर सो गई। निद्रा से भी मानो बालिका यही प्रार्थना करती थी कि, 'अनन्तकाल तक मेरी आंखों में नींद बनी रहे। "

अनाथिनी तो सो गई, फिर क्या हुआ? थोड़ी देर के बाद उसी घाट पर एक नाव आ कर लगी। उस पर एक पचास वर्ष के वृद्ध सवार थे। उनका रंग गोरा, शरीर दोहरा, हंसता चेहरा और ठाट-बाट अच्छा था। नाव पर से उतर कर सीढ़ी पर पाँव रखते ही वे चिहुंक उठे। उन्होंने देखा कि, 'निम्न सोपान पर एक बालिका पड़ी सो रही है!' "बालिका कौन है ? इतनी रात गए यहां क्यों पड़ी है?" इत्यादि जानने के लिये चंचल होकर वे बालिका की दशा देख कर बहुत उदास हुए। उन्होंने देखा कि, 'बालिका का मुख पूर्णचन्द्रसा होने पर भी निराशा की गाढ़ मसीमयी मेघमाला से आच्छन्न है और मुंदे नयनों की कोर से वर्षाविन्दु की तरह अश्रुविन्दु बरस रहे हैं!' अवश्य ही तब तक अनाथिनी के मन में चिन्ता की ज्वाला जलती होगी, क्योंकि मन सदा चंचल रहता है, कभी भी विश्राम नहीं करता। बहुत श्रम से और सब इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं, पर मन नहीं थकता। जान पड़ता था कि अनाथिनी की पहिलेवाली सब चिन्ताएं मिलकर भीतर आन्दोलन करती हों, इसीसे दुःखदायिनी चिन्ता के प्रताप से अनाथिनी सोई-सोई रो रही होगी!

अपरिचित व्यक्ति क्या करते? 'तुरंत निद्रा भंग करनी भी उचित नहीं है,' इत्यादि सोचते सोचते निर्निमेष लोचनों से वे उसकी ओर निहारने लगे। चन्द्र की चमकती किरण से उसके आंसू की लड़ी मोती सी झकझकाती थी।

सहसा उन्होंने बालिका के अंचल में एक गांठ देखकर जलदी से खोला तो एक पत्र निकला। उसको देखते ही वे कांप उठे! 'एं'—"! "हरिहरशर्म्मा" यह तो मेरा ही नाम है! और यह मेरे ही हाथ का लिखा पत्र है। मैने ही इसे लिखा था। ओः! जान पड़ता है, कि यही अनाथिनी है! देखूं बहुत दिन हुए, इससे खूब याद नहीं आता। वही होगी, ठीक वही है, पर यह यहां इस अवस्था में इस प्रकार क्यों पड़ी है?"

पाठक! हरिहरबाबू को आपने चीन्हा? उन्होंने घबड़ाकर जोर से पुकारा,—"बेटी! अनाथिनी! ओः! यहां क्यों आई?"

अनाथिनी गहरी नींद में थी, सो पहिली पुकार में करवट बदली, दूसरी बार जाग उठी। समझी कि "क्या पिता पुकारते हैं!" पर मन में तुरन्त स्मरण हुआ कि, 'पिता तो स्वर्ग में हैं!' वह बहुत डरी और निद्रा भी खुल गई। वह उठ बैठी और हरिहरबाबू की ओर एक बार देख कर उसने मुंह नीचा कर लिया।

हरिहर,—"तुम्हीं अनाथिनी हो? तुम इस निर्जन भागीरथी के किनारे अकेली कैसे आई?"

अनाथिनी,—"मैं ही अनाथिनी हूं, भाग्य के दोष से मेरी यह दशा हुई!"

हरिहर,—"एँ! तुम्हो अनाथिनी हो? तुम्हारे पिता कहां हैं? सुरेन्द्र कहां है?"

अनाथिनी,—"पिता स्वर्ग गए और भाई को कोई चुरा ले गया।"

हरिहर,—"हा! पिता स्वर्ग गए; यह कब?"

अनाथिनी,—"गत सोमवार की रात को।"

हरिहर,—"किस जगह?"

अनाथिनी,—"पास ही के स्मशान में।"

हरिहर,—"स्मशान में! वहां क्यों?"

अनाथिनी,—"वे हमलोगों को संग लेकर अपने एक मित्र के घर जाते थे। डर से नाव पर नहीं गए, जंगल लांघ कर स्मशान में पहुंचे; पर वहां बहुत सुस्त होने से वहीं पर प्राण गया। हा!"

हरिहर,—"हा! बड़ा दुःख हुआ। पहिले तो व्याकुलता,-फिर मर्मभेदी दुःख, उस पर बुढ़ापा, तिसमें पथश्रम,—ये ही सब मित्र की मृत्यु के कारण हुए। हा! वे तो अब अनन्तकाल के लिये सुखी हुए। हाय, रामशङ्कर कैसा पतित और निष्ठुर है! क्या ईश्वर उसे इसका प्रतिफल न देंगे! अवश्य ही देंगे? हा! सुरेन्द्र को कौन उठा लेगया?"

अनाथिनी,-"मैं पिता के मरने पर यहीं, पास ही, एक बूढ़ी की कुटीर में भाई के संग रहती थी, क्योंकि और दूसरा आसरा नहीं था। वहां एक फकीर परसों रात को आया था, वही ले गया।"

हरिहर,—"ठीक, ठीक!!"

अनाथिनी,—"आपका नाम क्या है, श्रीहरिहरशर्म्मा?"

हरिहर,—"बेटी! तूने कैसे जाना? मैंने तो तुझसे पहिले कुछ नहीं कहा था!"

अनाथिनी,—"आप पिता के लिये इतने दुःखित हुए। मैंने सुना था कि आपको छोड़कर मेरे पिता का दूसरा बंधु संसार में नहीं है।" इतना कहकर बालिका रोने लगी।

हरिहर,—"बेटी, अब न रो, मैं ही हरिहरशर्म्मा हूं। तुम्हींलोगों की खोज में घर से निकला हूं। चुप रह। रामशङ्कर की दगाबाजी से तेरा भाई हरा गया है।"

पिता के एकमात्र उपकारी मित्र को देखकर अनाथिनी का मन भर आया, भक्तिरस से शरीर फूल उठा। वह फूट फूट कर रोने और हरिहर के चरण पर गिर कर अनेक बिलाप करने लगी। हरिहरबाबू बहुत ही मर्माहत हुए। उन्होंने धीरे धीरे अनाथिनी को उठाकर बहुत समझाया-बुझाया।

कुछ देर में शान्त होकर अनाथिनी ने पूछा,—"पिता! सुरेन्द्र कैसे मिलेगा? मैं कहां—"

हरिहर,—"बेटी! वह जरूर मिलेगा। बिचारालय में मैं नालिश करूंगा, गवर्नमेन्ट अवश्य ही दुष्ट रामशङ्कर को दण्ड देगी और सुरेन्द्र को तुझे देगी। बेटी! तू मेरे घर की गृहलक्ष्मी होगी। आज से मेरे यहां सुख से रहियो! भूपेन्द्र जब प्रदेश से फिरैगा तो उसके संग तेरा विवाह कर दूंगा।"

अनाथिनी ने लज्जा से सिर झुका लिया। इनके पुत्र का नाम भूपेन्द्र था। अनन्तर दोनों नाव पर सवार होकर भागीरथी का तट त्याग कर आनन्दपुर की ओर चले।

पञ्चम परिच्छेद.

विचारस्थान ।

"मुञ्चन्ति नैव साधुत्वं, साधवो दीनवत्सलाः ।
तथैव च खलत्वं स्वं, खलाः पापरताः सदा ॥"

(व्यासः)

सन् १७६५ ई० के वैशाख का महीना था और सोमवार का दिन था। दस बज गए थे। कचहरी आनन्दपुर के पास थी। अशोक, मौलसरी, नीम आदि पेड़ों की छाया से स्थान ठंढा और मनोहर था। प्रत्येक पेड़ के नीचे अपनी अपनी दरी बिछा कर कचहरी के अमले-फैले, वकील-मवक्किल आदि बैठे थे। एक इमली के पेड़ के नीचे चार फकीर बैठे आपस में कुछ बातें कर रहे थे।

प्रथम,—"भाई मेहरबख़्श ! उसकी ऐसी हालत क्यों हुई ?"

द्वितीय,—"क्या जानूं भाई ! अल्लाह जाने ! शायद सौ रुपए के लोभ से।"

प्रथम,—"अब वे रुपए कहां हैं ? क्या होगा, यह कौन कह सकता है ? अच्छा यह काम कब किया था ?"

द्वितीय,—"नहीं कह सकता। उसका जमींदार के संग बहुत मेल है; सो कब यह काम किया ! यह क्या अच्छा हुआ !"

चतुर्थ,—"भाई यह बात कब हुई ?"

तृतीय,—"मैं जानता हूं; जिस दिन बहुत वर्षा हुई थी, उसी दिन यह काम हुआ था।"

प्रथम,—"ठीक है, ऐसा ही होगा। ओह ! इसीलिये उस दिन वह हमलोगों के संग भीख मांगने नहीं गया था। अच्छा वह क्योंकर पकड़ा गया ?"

तृतीय,—"वह बड़े ताज्जुब की बात है !"

द्वितीय,—"क्या, क्या ? कहो तो सही !"

तृतीय,—"शायद किसी चपरासी ने रात को वहां लुककर ये सब बातें सुनी थीं।"

प्रथम,—"चपरासी तो हमलोगों के महाल में कभी नहीं जाता, उस दिन कैसे गया था ?"

तृतीय,—"ठीक नहीं कह सकता, पर उस दिन किसीसे खबर पाकर हमलोगों की तरह भेस बनाकर और छिपकर उसने सब कुछ सुना था।"

प्रथम,—"यह बात मन में नहीं धँसती, वह किससे कहता था ?"

तृतीय,—"कदाचित् अपनी बहू से कहता होगा।"

प्रथम,—"ओः ! ठीक ! जब वह अपनी स्त्री से कहता होगा, तब उसे पकड़ लिया होगा !"

तृतीय,—"हां भाई, मुर्गदिल !"

प्रथम,—"अच्छा उससे क्या कहा था, शायद तुम्हें मालूम होगा।"

तृतीय,—'यह तो ठीक नहीं कह सकता।"

चतुर्थ,—"ओः ! मैं कुछ कुछ जानता हूं; कुछ कुछ क्या—सब कुछ जानता हूं।"

तीनों,—"जल्दी कहो ! तुम सब जानते हो तो कहो न, सुनें।"

चतुर्थ,—"पहले क्या कहूं ?"

तीनों,—"कहां लड़के को पाया था, यह कहो।"

चतुर्थ,—"गंगाकिनारे, एक कुटी में।"

तीनों,—"वह पाया कैसे गया ?"

चतुर्थ,—"वहां एक बुढ़िया रहती थी, उसीने उनलोगों को टिकाया था। हमारे जमींदार—उन्हें तो तुम जानते ही हो, कि वे किसीके सगे नहीं है! उन्होंने बुढ़िया तक का सर्वनाश कर डाला।"

तीनों,—"क्या कहा ! क्या कहा !"

चतुर्थ,—"क्या नहीं जानते? उसकी कुटी को फूंकफांकडाला।"

तीनों,—"ठीक ! अच्छा क्या बुढ़िया भी जल मरी ?"

चतुर्थ,—"उस समय वहां कोई नहीं था।"

तीनों,—"ये सब बातें जाने दो; यह कहो कि सिपाही को किसने खबर दी ?"

चतुर्थ,—"आनन्दपुर के एक जमींदार बलभद्रबाबू के मित्र हैं। उनके घर जाकर उस लड़के की बहिन ने कहा। उन्होंने गोइन्दे से ठीक ठीक हाल सुनकर कि, 'सुरेन्द्र को रामशंकर ही

छिपाए हुए हैं,' पुलिस में खबर दी कि, 'हरिपुर का एक फकीर सुरेन्द्र को चुरा ले गया है।' चपरासियों ने थाने का हुक्म पाकर हमलोगों के महल्ले में आकर खोजखाज की। उसी समय वह फ़कीर पकड़ा गया। क्यों ठीक है कि नहीं ?"

तीनों,—"ठीक है, क्यों भाई जमुर्रद !"

चतुर्थ,—"और भी कुछ सुना है ? उसी जमींदार ने रामशंकरबाबू पर भी नालिश की हैं।"

तीनों,—"यह क्यों ?"

चतुर्थ,—"उसी लड़के के लिये। आज केवल उस फकीर ही का नहीं, हमलोगों के जमींदारबाबू का भी मुकद्दमा होगा। कहां तक कहूं, चलो कचहरी में सब जान पड़ेगा। आज एक भयानक उपद्रव होगा, क्योंकि उस फकीर का भाई जल भुनकर कचहरी में इधर से उधर घूम रहा है !"

अब तक चारो ओर कोलाहल होता था, मजिष्ट्रेट साहब के इजलास पर आने ही कचहरी ने शान्तभाव धारण किया। ग्यारह बजे बिचार प्रारंभ हुआ। नाज़िर, पेशकार आदि अपनी अपनी काररवाई करने लगे। पांच सात जोड़ी गाड़ियां तेजी से बरसाती में आकर खड़ी हुईं। कई अपरिचित व्यक्ति उस पर से उतरे, उनमें सभी बे जान-पहचान के नहीं थे। पाठक ! देखिए हरिहरबाबू अनाथिनी को संग लेकर बिचारालय में पधारे हैं !

रामशंकरशर्म्मा के देखने के लिये इच्छा होती है। देखिए, हरिहरशर्म्मा की दूसरी ओर वे खड़े हैं। क्या चीन्हा ? ये बड़े सिरवाले, स्थूलकाय, आबनूस के कुंदे, मांसपिंड-विशेष रामशंकरबाबू दण्डायमान हैं ! सुरेन्द्र सुन्दर कपड़ा-लत्ता पहिरे एक किनारे बैठा है, क्या आपलोगों ने चीन्हा ? हा !—कैसा मलिन वस्त्र पहिरे अनाथिनी खड़ी है। दोनो बहिन-भाई एक ही जगह थे, पर सुरेन्द्र ने अनाथिनी को नहीं चीन्हा।

मजिष्ट्रेट साहब ने बिचार प्रारंभ किया, पीछे बद्धहस्त एक फकीर कटहरे में खड़ा किया गया, उसके चारो ओर प्रहरीगण सतर्क खड़े हुए थे।

यह वही भिक्षुक था, जो रात को वृद्धा की कुटीर में से बालक सुरेन्द्र को चुरा लाया था। अन्यान्य कामों में एक घंटा बीता,

फिर विचारपति इस ओर झुके।

मजिष्ट्रेट,—"मनसाराम! तुम इस लड़के को क्यों चुरा लाए थे?"

मनसाराम,—"जी, हजूर मां-बाप! जिमीदार के हुकुम से।"

मजिष्ट्रेट,—"बाबूरामशंकरदास! क्या आपने सचमुच ऐसा हुकुम दिया था?"

रामशङ्कर,—"जी हां! धर्म्मावतार!"

मजिष्ट्रेट,—"क्यों ऐसी आज्ञा दी?"

रामशङ्कर,—"दीनबंधु! इस बालक के पिता मेरे परमात्मीय थे। मरने के समय वे इसे मुझे दत्तकपुत्र की तरह दे गए थे, इसलिये इस बालक को, और बलभद्रबाबू की मित्रता स्मरण करके उनकी कन्या को मैंने आदर से अपने घर में रक्खा था। एक दिन—न जाने क्यों—वह लड़की अपने भाई को लेकर चुपचाप रात के समय भाग गई, इसीलिये इस फकीर से इस बालक को मैंने मंगवा लिया।"

मजिष्ट्रेट,—"फकीर को क्यों नियुक्त किया था? खैर—बलभद्रबाबू की मृत्यु कब हुई थी?"

रामशङ्कर,—"भिक्षुक सब जगह जाते हैं, इसीसे फकीर को इस काम में रक्खा था।"

मजिष्ट्रेट,—"वह बात रहने दो, बलभद्रदास कब मरे हैं?"

रामशङ्कर,—"मृत्यु तो—मृत्यु! हां! दो मास हुआ होगा।"

मजिष्ट्रेट,—"वे कहां मरे थे?"

रामशङ्कर,—"मृत्यु?—उनके घर ही मृत्यु हुई थी।"

मजिष्ट्रेट,—"बाबू हरिहरप्रसाद! आपको क्या वक्तव्य है?"

हरिहर,—"सब बातें बलभद्रबाबू की कन्या और पुत्र से पूछिए?"

मजिष्ट्रेट,—"अनाथिनी! तुम्हारे पिता को मरे कितने दिन हुए?"

अनाथिनी,—"महाशय! उस सोमवार की रात को!"

इस समय सुरेन्द्र ने बहिन को पहिचान कर हर्षपूर्वक आनन्दध्वनि मचाई। अनन्तर रामशंकर के पास से अनाथिनी के समीप जाकर बातें करने के लिये वह सुयोग खोजने लगा, पर कुछ नहीं हुआ, क्योंकि विचारपति के अनुरोध से उसे चुप और शान्त होना पड़ा।

मजिष्ट्रेट,—"अनाथिनी! तुम्हारे पिता ने रामशंकरदास

को सुरेन्द्र अर्पण किया है ? "

अनाथिनी,—" महाशय ! यह बात बिलकुल मिथ्या है। पिता की मृत्यु के समय रामशंकरदास कहां थे ? सुतरां बाबा सुरेन्द्र को उन्हें नहीं देगए हैं। "

मजिष्ट्रेट,—"अनाथिनी ! तुम जरा चुप होजाओ। सुरेन्द्र ! तुम्हें अपने बाप की याद आती है ? "

सुरेन्द्र,—" हां ! थोड़ी थोड़ी। "

मजिष्ट्रेट,—" वे इस समय कहां हैं ? बता सकते हो ? "

सुरेन्द्र,—" बाबा कहां ? बाबा स्वर्ग में हैं। "

मजिष्ट्रेट,—" वहां वे कब गए हैं ? कह सकते हो ? "

सुरेन्द्र,—"कब गए हैं ! कब मरे हैं ! सो ठीक कह सकता हूं।"

मजिष्ट्रेट,—" अच्छा ! कहो तो सही, वे कब मरे हैं ?"

सुरेन्द्र,—" जिस दिन मेरे उस घर में बड़ी जाफत थी, उस दिन बाबा मुझे तीसरे पहर निमंत्रण जीमने ले गए थे। अनन्तर उसी दिन, रात को मुझे गोदी ले और जीजी का हाथ थाम कर बाबा घर से बाहर हुए। पथ में उन्होंने मुझे गोद से उतार दिया था। बाबा से मैंने पूछा कि, ' कहां जाओगे ? ' तो वे कुछ बोले नहीं। इसके बाद एक मरघट में पहुंच कर जीजी की गोद में सिर धर कर वे सो गए। थोड़ी देर के पीछे उन्होंने आंखें खोलीं, फिर बन्द कर लीं। मैंने कितना पुकारा, परन्तु वे फिर नहीं बोले। तब मुझसे जीजी ने कहा कि, ' बाबा मर गए, स्वर्ग में गए'। "

बिचारक एक संभ्रान्त और चिन्ताशील व्यक्ति थे, और गाँव के समीप ही उनका बंगला था। उस दिन के 'भोज' की बात उन्हें स्मरण थी, सुतरां रामशंकरदास झूठे समझे गए।

मजिष्ट्रेट ने सुरेन्द्र से कहा,—"तुमने अच्छा इजहार दिया। हां तुम्हारे पिता कहां जाते थे, तुम कुछ जानते हो ? "

सुरेन्द्र,—"यह सब मैं कुछ नहीं जानता। बाबा ने जीजी से कहा होगा, वह जाने ! "

मजिष्ट्रेट,—"अनाथिनी ! तुम्हारे पिता घर छोड़कर कहां जाते थे ? तुम जो कुछ जानती हो, सब कहो। "

अनाथिनी,—"महाशय ! पहिले रामशंकरदास मेरे पिता के

वस्तुतः मित्र थे। प्रायः दो बरस हुए कि, इन्होंने बाबा को ५००) रुपए उधार दिए थे। बाबा ऋणग्रस्त होकर सदैव ऋण चुकाने का उपाय सोचते थे। रामशंकर ने पिता का अभिप्राय समझकर एक दिन अपने घर उन्हें बुलाकर कहा कि, '५००) रुपए जो मेरे हैं, वे मुझे नहीं चाहिए; सुरेन्द्र को मुझे गोद दे दो। दिन स्थिर कर लिया है, मंगल के दिन अच्छा मुहूर्त्त है।' इस पर बाबा कुछ नहीं बोले; घर आकर सब बातें उन्होंने मुझसे कहीं, फिर वे बहुत रोने लगे।"

मजिष्ट्रेट,—"जब तुम्हारे पिता ने रामशंकरदास से कुछ भी नहीं कहा, तो उनकी इच्छा लड़का देने की होगी। क्यों कि 'मौनं सम्मतिलक्षणं'।"

अनाथिनी,—"जी नहीं, कुछ भी इच्छा नहीं थी। वे बहुत ही दुखी हुए थे, इसीसे कुछ नहीं कह सके थे।"

मजिष्ट्रेट,—"अच्छा, फिर?"

अनाथिनी,—"फिर उसी दिन रामशंकर ने बाबा को बुलाकर बहुतसी बातें कहीं। बाबा फिर चुप नहीं रह सके, बोले कि, 'मैं कभी सुरेन्द्र को न दूंगा। भीख मांग कर भी आपके ऋण का परिशोध करूंगा, पर बालक न दूंगा; क्योंकि मुझे एक ही पुत्र है, इसलिये कैसे दूं? दरिद्र होने से क्या मैं दयाशून्य हूं?' यह बात कहकर घर आकर बाबा ने सब हाल मुझसे कहा। फिर उसी दिन रामशंकरदास सन्ध्या के समय मेरे घर आए और बोले कि,—'बलभद्रदास! इस विषय में अब मैं तुमसे मित्रता का व्यवहार न करूंगा। तुम्हारे पुत्र के लेने के लिये ही मैने रुपए उधार दिए थे।"

निदान, वे क्रुद्ध होकर बहुत सी ऊटपटांग बातें कहकर चले गए। बाबा बहुत रोए, अनन्तर वे बोले कि,—'अब रोने से क्या होगा? मेरे एक मित्र हैं, उन्हें यह हाल जनाऊं। वे अवश्य ही मेरी सहायता करेंगे। मैं उनके यहां जाऊंगा; क्योंकि अब इस गांव में नहीं रहना चाहिए। जन्मभूमि होने से क्या होता है? शत्रु तो बहुत हैं!'—यह बात कहकर चुपचाप उन्होंने अपने मित्र को पत्र लिखा। आशा लगाए लगाए उन्हें उत्कट पीड़ा हुई। अस्तु ठीक समय पर पत्र का ज़वाब मिला। मुझसे उन्होंने और कुछ नहीं कहा था। एक दिन उन्हीं मित्र के घर हमलोग जाते थे कि मर्घट में पहुंचकर बाबा

का परलोकवास हुआ।"

बात तै हुई और अनाथिनी की आंखों से आंसू बहने लगे; सुरेन्द्र भी चुप नहीं था।

मजिष्ट्रेट,—"ठीक है ठीक है!!! रामशङ्करदास! तब तुम कैसे सुरेन्द्र को बलात्, अर्थात् बलभद्रदास की सम्मति बिना, नियमपूर्वक दत्तक ले सकोगे? सुरेन्द्र तुम्हारा कोई नहीं होसकता।"

सहसा बिचारक आर्त्तनाद करके कुर्सी पर से भूमि में गिर पड़े। क्यों कि एक तीखी छुरी उनके बगल में घुसी थी! सभोंने घबड़ाकर बिचारक को उठाया। यह किसका काम था? उसी गर्भस्राव पापिष्ट रामशङ्कर के आदेश से मनसाराम के भाई खुराफातअली का! इस समय रामशङ्कर गायब होगए थे। बिचारक अस्पताल पहुंचाए गए और दो कान्सटेबिल रामशङ्कर की खोज के लिये दौड़े।

धीरे धीरे गोलमाल मिटा। हरिहरप्रसाद अनाथिनी और सुरेन्द्र को संग लेकर गाड़ी पर चढ़े। इसी समय एक वृद्धा गाडी के पास आकर खड़ी हुई। यह वही बुढ़िया है, जिसने अनाथिनी को आश्रय दिया था।

वृद्धा को देख कर अनाथिनी ने आल्हाद से कहा,—"मां! तुम कहां गई थीं?"

वृद्धा,—"एं, बेटी! मैं तभी से सुरेन्द्र की खोज में गांव गांव मारी मारी फिरती थी। किसीने कुटीर फूंक दिया, तुम भी वहां न थीं, और क्या—"

अनाथिनी,—"मैं तो यह रही मां! आओ न, इसी गाड़ी पर! सब कोई एक ही जगह रहेंगी, आओ मां, चलो!"

वृद्धा,—"बेटी! तुम्हें देख लिया, अब क्या।"

हरिहरबाबू वृद्धा के उपकार की बात जानते थे, इसलिये उन्होंने सादर उसे गाड़ी पर चढ़ा लिया।

अनाथिनी,—"मां! तुम क्यों कचहरी आई थीं।"

वृद्धा,—"सुना था कि फकीर ने जो लड़का चुराया था, उसका बिचार होगा; इसीसे यहां आई थी।"

अनन्तर अनेक तरह की बातें करते करते सब कोई गए।

षष्ठ परिच्छेद

हरिहर का गृह।

"पतिर्हि देवो नारीणां, पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः।
पत्युर्गतिसमा नास्ति, दैवतं वा यथा पतिः॥"

(व्यासः)

दिन के एक बज गए थे। बड़ी कड़ी धूप विशुद्ध सोने की भांति झकाझक चमक रही थी। हम यह कह आए हैं कि बाबू हरिहरप्रसाद का घर आनन्दपुर में था। घर की बहू-बेटी, दास-दासी आदि घर के कामों को पूरा करके ठंढी जगह में आराम करती थीं। ग्राम एक प्रकार निस्तब्ध था, किन्तु बीच बीच में पेड़ों पर बैठे कौवे कर्कश चीत्कार करते थे। गृहस्थों की बहू-बेटी परस्पर एक दूसरी की जूओं का शिकार खेलती खेलती कौवों की टांय टांय से विरक्त होकर उन्हें सात-समुन्दर पार जाने का अभिशाप देती थीं। रह रह कर आकाश में मड़राती हुई चीलहों की कठोर ध्वनि कानों में वज्र सी सुनाई देती थी। जो हो, हरिहरबाबू के घर में बड़ा गोलमाल होता था। घर तिमंजिला था। अच्छा, बाहर ही से प्रारंभ हो,—अब तक भी बाबूसाहब के भोजपुरिये दरवानों का भोजन नहीं निपटा था। कोई भांग घोटते थे, कोई रोटी बनाते थे, कोई खरहरी खटिया पर पड़े पड़े असभ्य गीत उड़ाते थे और कोई इधर उधर टहलते हुए पेट पर हाथ फेरकर खाया-पीया भस्मसात् करने का उपक्रम करते थे; पांच-चार आदमी इधर उधर की लम्बी-चौड़ी बातें, किस्से-कहानियां और गप्प-सड़ाके लड़ा रहे थे।

घर के भीतर नीचे की दालान में भी बड़ा तुमुल काण्ड उपस्थित था! दलान ठंढी थी, इसलिये महल्लेवाली बहुत सी युवती और प्रौढ़ा स्त्रियां आकर सिर खोल और आंचल पसार कर आलस्य दूर करती थीं, और लेटे लेटे बड़ी बड़ी गप्पें हांकती थीं। पहले तो प्रत्येक के खाने-पकाने की बातें हुईं; कोई कोई अपनी रसोई की निपुणता से गर्वित होकर बोलीं,—'हां जी! उस दिन की

मूंग की दाल तो मुझसे बढ़कर महल्ले भर में नहीं बनी था।' कोई बोलीं,—'भाई, मुझसे अच्छी क्या कोई रसोई बनावेगा!' कोई बोलीं,—'उस महल्ले में उस दिन फलाने बाबू के लड़के का ब्याह न था!' बस रसोई की बात छोड़ कर अब बर की समालोचना होने लगी। देखते देखते बर के सब दोष-गुण बाहर निकल पड़े! फिर उत्तर ओर के एक कोने की बात उठी। कोई बोली,—'भाई, बड़े घर की बेटी है, उलटा-पलटा खा रही है तो कोई नहीं पूछता!' कोई बोलीं,—'छोकड़ी की बातें सुनो तो बस,—'सोता सती पारबती!'—जानों बिचारी कुछ नहीं जानती, दूध पीती है!' कोई बोली,—'जैसा रूप, तैसा गुण!' कोई बोलीं,—'ठीक तो है! बाप के गुण पर चली जाती है! 'बनारस' जाकर डाक्तरों की सहायता से पेट का दोष मिटा कर, फिर आकर शुद्ध गंगाजल बन गई!' इसी प्रकार अनेक गुरुतर विषयों की समालोचना होने के अनन्तर सब 'हूं'!!! करती करती सोगई।

इस समय दलान ने तो शान्तभाव धारण किया, किन्तु पासवाले कोठे में दो-चार दासियां अनाज की महँगी के ऊपर भयानक वक्तृता छांट रही थीं। ऊपर के अनेक कमरे सूने थे, क्योंकि सभी नीचे ही की दालान में अड़ी थीं; केवल बंगले में कोच के ऊपर हरिहरप्रसाद हाथ में पुस्तक लिये निद्रित थे। उसके समीपवाले एक घर में किसी बालिका ने प्रवेश किया। बालिका का नाम सरला था, यह हरिहरबाबू की कन्या थी। इसका बयस तेरह वर्ष का था, किन्तु कई कारणों से अभी तक यह अविवाहिता थी। यह अनाथिनी की अतिशय प्रियसखी थी।

घर में घुसते ही इसने पुकारा,—"अनाथिनी! व्यर्थ रात दिन क्या सोचा करती हो?"

अनाथिनी उसी घर में चिन्तामग्न बैठी थी, इसलिये उसने कोई उत्तर न दिया। तब सरला ने फिर हँस कर कहा,—"नहीं भाई! आज से मैं तुम्हें अनाथिनी न कह कर बहू कहूंगी।"

अनाथिनी ने प्रकृतिस्थ होकर कहा,—"नहीं सखी, यह क्या कहती हो? लोग सुनकर क्या कहेंगे!"

सरला,—"नहीं, भाई! मैं तो 'बहू' ही पुकारूंगी; लोगों के डर से तो मानों मर गई!!!"
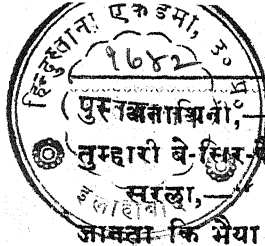
अनाथिनी,—“ देखो ! नीचे की दलान में सब कोई बैठा है; तुम्हारी बे-सिर-पैर की बातें सुनकर वे सब मन में क्या कहेंगी ?”

सरला,—“ मैं तो कहूंहींगी,—क्या ? ‘ बहू ’ ! कौन नहीं जानता कि भैया के आने पर तुम उनसे ब्याही जाओगी । ”

अनाथिनी,—“ तुम्हारे जो मन में आवै सो कहो । सरला ! मैं देखती हूं कि बहू बनने का तुम्हें बड़ा चाव है ! ”

सरला,—“ जाओ, मैं न बोलूंगी । ”

अनाथिनी,—“ क्यों, सरला ! खफा हुई क्या ? ”

सरला,—“ बहू’—भई ! तुम समझी नहीं ?’

अनाथिनी,—“ नहीं, मैं कुछ भी नहीं समझी, कहो न भई !”

सरला,—“ मैं तो तुम्हें ‘बहू’ पुकारती हूँ और तुम मेरा नाम लेती हो ? ”

अनाथिनी,—“ ओहो ! बीबीजी (ननद) कहूं क्या ? ऐं ! वही तो देखती हूं ! ”

सरला,—“ अब तुम कुछ राह पर आई । मैं क्या कहती थी ? वहू !’—”

अनाथिनी,—“ बीबीजी ! मैं यह कहती हूं कि तुम्हें बहू बनने की बड़ी चाह है ! ”

सरला,—“ किसे साध नहीं होती ? अब तक तो कभी की मैं बहू हुई रहती, पर वैसी बहू नहीं हुई, सोई अच्छा हुआ ।”

अनाथिनी,—“क्यों, अभी तक तुम्हारा व्याह क्यों नहीं हुआ ?”

सरला,—“ प्रायः तीन मास हुए; बाबा एक बर खोज लाए थे, पर वे मुझे पसन्द नहीं थे, इसलिये उन्हें मैंने हवा खिलाई !”

अनाथिनी,—“हवा खिलाई ? ऐ है ! वे कहां के बर थे ? उनका घर कहां है ? ”

सरला,—“मेरे मामा के घर के पास उनका मकान है ।”

अनाथिनी,—“तो जान पड़ता है कि वे तुम्हें अच्छी तरह जानते होंगे ! ”

सरला,—“खूब अच्छी तरह ! ! ! ”

अनाथिनी,—“तो फिर तुमने विवाह करना अस्वीकार क्यों किया ? ”

सरला,—“पसन्द नहीं हुआ, इसीसे अस्वीकार किया ! ! ! ”

अनाथिनी,—"सरले! वे क्या तुम्हें बहुतही चाहते थे?"

सरला,—"वे मुझे अब तक प्राण से ज्यादे चाहते हैं, पर उन्हें मैं इतना नहीं मानती।"

अनाथिनी,—"तुमने जो ब्याह करना न चाहा तो वे चुपचाप चले गए होंगे?"

सरला,—"न जाते तो क्या करते? परन्तु वे केवल चले ही नहीं गए, वरन जाते समय कई बूंद आंसू भी यहां गिरा गए!"

अनाथिनी,—"वे रोए थे?—सरला! यह तुमने अच्छा काम नहीं किया। आहा! उनकी आशा को एक दम से काटना तुम्हें उचित नहीं था। वे तुम्हें यथार्थ ही चाहते थे। मैं जो उस समय यहां होती तो उनसे विवाह करने के लिये तुम्हारा अनुरोध करती।"

सरला,—"बहू! तुम कहीं पागल न हो जाना!"

अनाथिनी,—"वे रोए थे, यह बात सुनकर भी तुम्हारी पत्थर सी छाती नहीं पसीजी!"

सरला,—"दया कैसी? जिसे मैं नहीं चाहती, उसे तुम्हारा नन्दोई कैसे बनाऊं?"

अनाथिनी,—"हाय! तुम्हें दया नहीं आती? सभी क्या अभिलषित वस्तु और प्रेमपदार्थ पाते हैं? यदि ऐसा होता तो संसार में इतना दुःख न रह जाता। उन्हीं के संग तुम्हें ब्याह करना उचित था। पिता जिसे ले आए थे; उसीको सादर ग्रहण करना था। विशेषतः वे तुम्हें चाहते भी थे। प्रेमपदार्थ न मिलने से कैसा कष्ट होता है, यह तुम्हें मालूम नहीं है।"

सरला,—"बहू! तुम विक्षिप्त हुई क्या? यह बात मैं क्या नहीं जानती?"

अनाथिनी,—"अच्छा! यदि फिर वे यहां आवैं, तुम्हारी खुशामद करैं, तुम्हारा कुछ सन्तोष करैं, और मैं भी उनकी ओर से तुम्हारा चिबुक धरकर बिनती करूं, तो क्या तब भी तुम उन्हें न अपनाओगी?"

सरला,—"बहू! तुम उनके लिये इतना क्यों सोच करती हो? यहां आने के समय तुमसे बाबा ने कुछ कहा था?" इतना कहकर वह मन में कहने लगी,—"कदाचित भैया उन्हीं

को खोजने गए हैं !"

फिर वह अनाथिनी से बोली,—"बहू ! मेरा वर स्थिर हुआ है, और उसके संग मेरा एक प्रकार से विवाह हो भी गया है !"

अनाथिनी,—"किस प्रकार से ? भई ! कुछ समझ नहीं पड़ता, खुलासा कहो ?"

सरला,—"कल मैंने एक सपना देखा था। वही सपना, जिसपर तुम सबेरे यों कहती थीं कि, 'सरला ! सूती सूती क्या हंस रही हो ?' याद है ?"

अनाथिनी,—"हां सचमुच तुम हंसती थीं ! अच्छा तुमने कौन वा कैसा सपना देखा है ?"

सरला,—"क्या कहूं ! तुम जानती ही हो कि सरला निर्लज्ज है। देखो, कल मैंने स्वप्न देखा था, मानो एक उदासीन के संग मेरा ब्याह हुआ है !"

अनाथिनी,—उदासीन ! किसके लिये उदासीन ? क्यों तुमने उनसे बिवाह किया ? वे स्वीकृत हुए थे ?"

सरला,—"कुछ याद नहीं आता ! अच्छा, वह बात जाने दो। बहू ! भैया के आते ही तुम्हारा ब्याह होगा।"

इस पर अनाथिनी लजाकर चुप होगई कुछ न बोली।

सरला ने कहा,—"बहू ! तुम्हारा ब्याह होगा, इसे सुनकर तुम खुश क्यों नहीं होतीं ? देखो मेरा ब्याह अभी केवल सपने में हुआ है, सो मुझे कितना हर्ष है ! कब उदासीन आवेगा ! जब स्वप्न देखा था तो यही निश्चय किया था कि चाहे कोई कुछ कहै, पर मैं तो इन्हीं उदासीन से ब्याह करूंगी। बहू ! तुमने भैया की मोहिनी मूर्त्ति नहीं देखी है, इसीसे तुम्हें आमोद नहीं होता। 'पृथ्वी में कोई मनोनीत वस्तु नहीं पाता' यों कहकर अभी तो तुम बहुत पण्डिताई छांटती थीं, परन्तु तुम मनोनीत वस्तु पाओगी ! यदि उदासीन मिलै, तो मैं भी इच्छित वस्तु लाभ करूं। बहू ! भैया का चित्र देखोगी ?"

यह कहकर सरला दूसरे कमरे में से एक सुन्दर फोटो ले आई। अनाथिनी उसे देखते ही थर्रा कर मूर्च्छित होगई, और सरला के बहुत यत्न से चैतन्य लाभ करने पर वह बहुत रोदन करने लगी।

सरला ने कहा,—"क्यों रोती हो ? बहू ! क्या दादा पसन्द नहीं हैं ? तुम ऐसी क्यों होगई ? ऐं भाई ! गांव की सब युवती भैया के रूप-गुण की प्रशंसा करती हैं, पर तुम्हें वे पसन्द नहीं हैं ! भई ! क्यों इस तरह रोने लगीं ? बोलो अनाथिनी ? क्यों रोती हो ?"

अनाथिनी ने कष्ट से आंसू रोक कर कहा,—"सरला ! तुम जरा स्थिर होवो, मैं सब कहती हूं ।"

सरला,—"बोलो बोलो, चुप क्यों होगई ! क्या हुआ ?"

अनाथिनी,—यह तसवीर किसकी है ?"

सरला,—"क्यों ? कहा तो सही कि बड़े भैया की है !"

अनाथिनी,—"मैंने ऐसे ही एक व्यक्ति को बड़ी बिपद में देखा है !"

सरला,—"ऐं ! कैसी ? कैसी बिपद ?"

अनाथिनी,—"एक भयानक कापालिक के हाथ बंदीरूप में।"

सरला,—"कापालिक ! ओः बाबा ! वह तो नरबलि देता है न ? भला, भैया क्यों उसके हाथ पड़ने लगे ! कोई दूसरा अभागा होगा ।"

अनाथिनी,—"सरला ! मैं मिथ्या नहीं कहती । यदि मेरी स्मरणशक्ति विश्वासयोग्य हो, यदि मेरे नेत्र विश्वासपात्र हों तो यह प्रतिमूर्त्ति उन्हींकी है, इसमें सन्देह नहीं ।"

सरला,—"तो वे ही होंगे । हाय, बाबा का करम फूटा ! हां भई, तुमने उन्हें कैसे देखा था ? क्यों वे कापालिक के हाथ पड़े ? उन्होंने क्या किया था ?"

अनाथिनी,—"सुरेन्द्र को खोजने के लिये मैं उसी पथ से जाती थी । भयङ्कर आंधी-पानी आने से समीपवाले एक भग्नगृह में मैं घुसी । वहां सुरेन्द्र को मैंने पुकारा । तत्क्षण एक युवक ने मुझे भागने के लिये कहा । फिर बहुत बातें होने पर उन्होंने कहा कि, 'अपनी भगिनी के पति को खोजने के लिये मैं जाता था, रात को आंधी, पानी और अंधेरे के कारण इसी जङ्गल में पथश्रम दूर करने के लिये मैं सो गया । प्रातःकाल उठकर मैंने देखा कि, 'कापालिक के हाथ में बन्दी हुआ हूं !' समझीं !"

इतना कहकर अनाथिनी ने रोते रोते अपने मन में कहा,— "हाय ! सरला ! उनकी सब बातें मेरे मन में गँठी हैं, उन्हींके

लिये मेरा मन ऐसा दग्धप्राय होरहा है और उन्हीं के लिये मैं सदा सोच में डूबी रहती हूं। हाय! क्या मेरा ऐसा भाग्य है कि वे मुझे मिलेंगे?"

सरला,—"ठीक है। वे घोड़े पर चढ़कर ठीक उसी काम के लिये जाते थे। क्या सर्वनाश! हाय! कैसे उनका उद्धार होगा? यह हाल बाबा से कहूं क्या?"

अनाथिनी,—"नहीं, अभी उनसे न कहो।"

यों कहकर अनाथिनी ने मन में कहा—"इतने दिन हुए, हाय! अबतक क्या वे इस संसार में जीते-जागते रहे होंगे! हा!"

सरला,—"तो, भई! कौन उपाय करना चाहिए?"

अनाथिनी,—"देखो! आज रात को मैं अकेली वहां जाकर कापालिक की बिनती करके उन्हें छुड़ा लाऊंगी। मुझे ऐसा बिश्वास होता है, कि मेरी बिनती पर वह उन्हें छोड़ देगा।"

सरला,—"नहीं नहीं, मैं भी तुम्हारे संग चलूंगी। मैं जो यहां रहूंगी तो बाबा तुम्हारा हाल पूछेंगे, तब मैं क्या कहूंगी? इसलिये मैं भी संग ही चलूंगी। और देखो, राह बाट में एक आदमी जरूर संग चाहिए, सो प्रेमदास रसोइयें को लेलूंगी।"

अनाथिनी,—प्रेमदास पथकष्ट सहना स्वीकार करेगा?"

सरला,—प्रेमदास विवाह के लिये इतना पागल है कि हद्द से ज्यादे! वह भी ब्याह के लिये ब्याकुल है और शायद किसी सुन्दरी पर मरता है। बस जहां उससे यों कहा कि, 'प्रेमदास! चलो, तुम्हारा ब्याह करादूंगी,' तहां बस चुपचाप वह सब दुःख सह लेगा। पर है वह बड़ा डरपोक!"

अनाथिनी,—"हां! वह तो पोंगा हई है, तौ भी उसका संग रहना अच्छा होगा; पर उसे यह वृत्तान्त न मालूम हो।"

सरला,—"अच्छा।"

अनन्तर दोनों चुपचाप अपने चलने की तयारी करने लगीं और रात के आठ बजने पर अनाथिनी, सरला और प्रेमदास घर से चुपचाप एक ओर को चलदिए।

सप्तम परिच्छेद.

पान्थनिवास ।

"अपूर्वं चौर्यमभ्यस्तं, त्वया चञ्चललोचने ।
दिवैव जाग्रतां पुंसां, चेतो हरसि दूरतः ॥"

(कलाधरः)

आनन्दपुर से सात कोस उत्तर एक पान्थनिवास (धर्मशाला) था। पहिले ही से तीन पथिकों ने आकर उसकी तीन कोठरियां छेंक ली थीं, और थोड़ी देर के पीछे सदर द्वार बंद होगया था। दो पहर रात गई होगी, इस समय धर्मशाला की स्वामिनी 'सुबदना' की कोठरी बन्द थी, उसमें बाहर से किसीने धक्का मारा। सुबदना ने जल्दी द्वार खोल दिया, और देखा कि, 'दो स्त्रियां और एक तीस बर्ष का युवक खड़ा है!' इन तीनों जनों को पाठकों ने चीन्हा होगा! इनमें एक सरला, दूसरी अनाथिनी और तीसरे प्रेमदास थे!!!

प्रेमदास अभीतक क्वारे थे। अर्थाभाव से कैसे ब्याह हो? तिसपर वे एक सुन्दरी पर मरते थे, और वह सुन्दरी आधी बिधवा थी, तथा यह जानती भी नहीं थी कि, 'मुझ पर प्रेमदास का प्रेम है!' अस्तु। प्रेमदास का चरित्र सर्वथा सुन्दर था। वे कभी कभी हरिहरबाबू के यहां रसोई करते थे, परन्तु प्रायः घर के मन्दिर में नारायण की पूजा किया करते थे। वे अपने कुटुम्ब में अकेले थे।

प्रेमदास मार्ग के श्रम से बहुत थक गए थे, पर उन्हे सरला का वह सरल वाक्य स्मरण था कि, 'चलो, तुम्हारा ब्याह करा दूंगी!' वही वाक्य आकर्षण करके यहां तक प्रेमदास को खींच लाया था। स्थान आदि स्थिर हुआ, और यह निश्चय हुआ कि, 'सरला और अनाथिनी कोठरी के भीतर, तथा प्रेमदास बाहर सोवैं। सुबदना का सुबदन देखकर प्रेमदास चौंक उठे, क्यों कि यही उनकी अभिलषित आकाशकुसुम थी, इसे देखते ही उनकी

पथश्रम तो हवा होगया ! उन्होंने विचारा कि, 'सरला कोई देवी का अवतार है ! अहा ! सुबदना ही अब मेरी गृहणी होगी, इससे देवी सरला-सुन्दरी यहां मुझे ले आई हैं ! वाह ! क्या आज ही रात को ब्याह होगा ?"

प्रेमदास अति घने सस्मित-कटाक्ष सुबदना के बदन के ऊपर बरसाने लगे ! निर्निमेष-लोचनों से मानो वे उसे लील जांयगे ! सुबदना रसिका होने पर भी सच्चरित्रा और परिहासप्रिया थी। यद्यपि अब इसकी पच्चीस वर्ष की उमर होगई थी, तौभी यह नहीं जानती थी कि, 'पुरुषसहवास किस चिड़िया का नाम है !' अस्तु, वह भी प्रेमदास का कुछ प्रेम जानती और उन्हें अच्छी तरह पहचानती थी; इसलिये वह भी प्रेमदास की ओर प्रेमपूर्वक निहारती और मुस्काती थी। सुबदना सरलहृदया और दयालु थी, इसलिये उसने सरला और अनाथिनी की उपयुक्त सेवा की। उसने इन लोगों के आनेका—इतनी रात को इस तरह आनेका—मतलब नहीं पूछा, यह अच्छा किया; क्यों कि पूछने पर भी यथार्थ उत्तर वह नहीं पाती; क्यों कि सरला और अनाथिनी ने मनोरथ सिद्ध होने के पूर्व अपना कृत्य गुप्त रखने का सङ्कल्प कर लिया था, और ऐसी अवस्था में ऐसा ही करना बुद्धिमानी का काम है।

अनाथिनी चुपचाप स्वयं सोचती थी कि, 'किस तरह सबसे छिप कर पूर्वोक्त भग्नगृह में जाऊं !' क्यों कि सरला को उस भयानक स्थान में संग ले जाने की उसकी इच्छा नहीं थी। उसने मन ही मन यह सङ्कल्प भी किया था कि, 'यदि बंदी जीते हों, और उन्हें स्वयं उद्धार न कर सकूं तो फिर यह मुंह लेकर हरिहरप्रसाद के घर न फिरूंगी; और यदि ईश्वर न करे, बंदी को कुछ होगया हो, तो तत्क्षण प्राण त्याग दूंगी।'

प्रेमदास ने सोचा कि, 'कोई कोई व्यक्ति नायक के पास नायिका को लाकर आप वहांसे हट जाते हैं, शायद सरला और अनाथिनी का यही मतलब होगा, जो मुझे अकेले बाहर रहने दिया ! ठीक बात है। जान पड़ता है कि भीतर दोनों सोगई होंगी, तब तो सुबदना मेरी महिषी है ! तो फिर मैं घर के बाहर क्यों बैठा रहूं ! और सुबदना ही भीतर क्यों है ? मैं पुरुष हूं और

सुबदना स्त्री है; यदि सुबदना स्वयं मेरे पास आवै तो भला— पहिले कौन बोलेगा? मैं बोलूंगा! क्यों? मैं तो नायक हूं न? इसी समय रसिकशिरोमणि सुबदना सरला के संग चिन्तामग्न प्रेमदास के पास आई।

प्रेमदास ने सरला को भी संग देखकर उससे आग्रह से कहा,— "क्यों सरला! इतना कष्ट उठा कर और सब छोड़ छाड़ कर यहां तक आया, पर तुमने जो कहा था— — —"

सरला,—"प्रेमदास! देख लो! तुम्हें यह बहू पसंद है न? यही तुम्हारी महिषी होगी।"

प्रेमदास,—"यही होगी? ऐसा मेरा पाटी सा भाग है! ऐं! तुम इन्हें मेरे पास शायद इसी लिये ले आई हो?"

सरला,—"हां जी! इसमें संदेह क्या है?"

प्रेमदास,—"सो कुछ नहीं, इन्हें तो मैं जन्म से क्या—मां के पेट ही में से चाहता हूं! अच्छा, यह महिषी हैं, और मैं नायक हूं, सुतरां महिष हूं!"

यह सुनकर सुबदना ने हँसकर सानुराग कहा,—"तुम्हारा नाम क्या है? प्रेमदास! वाह, खूब ही नाम है! जो तुम्हें चाहै, तुम उसीके दास!!!"

प्रेमदास ने दीर्घनिश्वास त्याग कर के कहा,—"सचमुच, जो मुझे चाहै, मैं उसीका क्रीतदास, चिरदास, अनन्यदास, असंख्य-दास और दासानुदास हूं!!!"

सुबदना,—"प्रेमदास तुमने दीर्घनिश्वास क्यों लिया?"

प्रेमदास,—"यही कि मेरे ऐसे अभागे को आज तक किसीने नहीं चाहा, इसीलिये दीर्घनिश्वास त्यागा। हां तुम्हारा नाम!"

सुबदना,—"मेरा नाम क्या भूल गए? सुबदना!!!"

प्रेमदास,—"अहा! यह नाम तो मेरे हृदय में चिरकाल से लिखा है। इस समय मारे प्रेम के भूल गया था, क्षमा करना।"

प्रेमदास का सुबदना पर प्रेम है, इसका हाल सरला कुछ भी पहिले से नहीं जानती थी, और वह प्रेमदास को निरा भोंपू समझती थी; इसलिये ब्राह्मण के संग परिहास करने और आश्वास देने के लिये सुबदना से विशेष अनुरोध करके वह अनाथिनी के पास आ सोई। सुबदना रसिका थी, यह तो हम कहो आए हैं;

सो, प्रेमदास की मनस्तुष्टि के लिये वह जी खोल कर हास-परिहास करने लगी। सरला को टल जाते देख कर प्रेमदास ने सच ही विश्वास किया कि, 'सरला सुबदना को मेरे मन की परीक्षा लेने के लिये अकेले में छोड़ गई है! अरे उसने कुछ कुछ सुबदना के कानों में भी तो कहा रहा!' इत्यादि सोच कर प्रेमदास ने, जो जन्म से सुबदना को प्राण से भी अधिक चाहा था; इसका प्रबलतम प्रमाण वे देने लगे।

प्रेमदास,—"सुबदना! आहा क्या ही नाम की सुन्दर परिपाटी है! यथार्थ ही सुबदना! सुबदना!! सुबदना!!! सुबदना और प्रेमदास, इन दोनों नामों में चार ही अक्षर तो हैं!"

सुबदना,—"प्रेमदास! तुम बड़े रसिक पुरुष हो! तुम क्या मुझे अपनाओगे, ऐसा क्या मेरा भाग है!!!"

प्रेमदास,—"मैं रसिक हूं? ठीक! विवाह नहीं हुआ, पर उसके लिये जन्म से रसिकता सीख रक्खी है; किन्तु मुझे किसीने नहीं अपनाया, सबने दूर किया; इससे रसिकता कुछ भूल गया होऊंगा। सरला सहसा मुझे ब्याह का भरोसा देकर ले आई है, इसीसे मुझे रसिकता सीखने का समय नहीं मिला; अतएव मन में जो 'अनाप शनाप' आता है, वही बकता हूं।"

सुबदना,—"क्या कहा! ब्याह नहीं किया, निकाल बाहर किया! क्या सर्वनाश! किस अभागिनी ने ऐसा किया! कौन अभागिन प्रेमदास से विवाह करने से पीछे हटी! ओः! समझी! यदि दूसरी तुम्हें जकड़ बैठती तो फिर मेरा भाग कैसे खुलता! इसी लिये किसीने तुमसे ब्याह नहीं किया!"

प्रेमदास,—"तुम मेरी होगी, ऐसा क्या मेरा भाग है? वह दिन कब आवैगा?"

सुबदना,—"स्थिर होकर सुनो! पहिले तुम्हारा मन खोल लूं पीछे और बात होगी। प्रेमदास! तुम क्या मुझे जी से चाहते हो?"

प्रेमदास,—"सुबदना! जिस दिन पहिले-पहिल मैंने तुम्हें देखा था, उसी दिन से तुम्हें मैं दिल से चाहता हूं। मैं जनेऊ (यज्ञोपवीत) की शपथ खाकर कहता हूं कि तुम्हें मैं प्राण से भी अधिक प्यारी समझता हूं।"

सुबदना,—"तुम ब्राह्मण हो! हाय, तुम अभी तक यह नहीं

समझे कि, 'मैं तुम्हारे स्पर्शयोग्य भी नहीं हूं !' आः बाबा ! ब्राह्मण अग्नितुल्य है, इसलिये मैं तो भागती हूं ! "

प्रेमदास,—"सुबदना ! यदि ऐसा है तो मैं भी ब्राह्मण नहीं हूं। यदि विश्वास न हो तो परीक्षा कर लो; जो कहो तो मैं इस जनेऊ को अभी तोड़कर फेंक दूं ! तुम कहो तो मैं डुग्गी पिटवा दूं कि, 'प्रेमदास आज से ब्राह्मण नहीं है' ! "

सुबदना,—"तुम निश्चय ही ब्राह्मण नहीं, बल्कि महाब्राह्मण हो ! यह देखो, तुम्हारे माथे में त्रिपुण्ड लगा है ! "

प्रेमदास,—"हाय ! आज मेरे सभी शत्रु होगए ! प्यारी सबदना ! पहिले से जो मैं जानता—क्षमा करो, क्षमा करो—सुबदना ! हां, तुम कौन वंश की हो ? "

सुबदना,—"क्यों ! मैं तो कुलीन ब्राह्मण की लड़की हूं ! "

प्रेमदास,—"अरे ! मैं भी तो वही हूं। ऐसा न होने से भला मेरा आर्य-मन तुमपर क्यों आसक्त होता ? सुबदना ! तुम्हारा मन मुझसे राजी है ? "

सुबदना,—"प्रेमदास ! मेरे चरित्र के सम्बन्ध में लोग बहुत छिद्र देखते हैं, तुम क्या मुझे ग्रहण कर सकोगे ? किन्तु हां, तुम मेरे मनोनीत हो। "

प्रेमदास,—"चरित्र-छिद्र-विशिष्ट है,—यह मैं नहीं मानता; जो हो, मैं तुम्हें आदर के सहित हर्षपूर्वक ग्रहण करूंगा। "

सुबदना,—"ब्याह करके मुझे कहां ले जाओगे और कैसे मेरा भरण-पोषण करोगे ? "

प्रेमदास,—"सुबदने ! घबड़ाओ मत। हरिहरबाबू मुझे बहुत मानते हैं, इसलिये वे मुझे भारवाही देखकर घर-द्वार जरूर देंगे। तुम कुछ सोच न करो, मैं ठाकुरजी का भोग तुम्हीं को लगा दूंगा। "

सुबदना,—"तो तुम मुझे वस्तुतः खूब चाहते हो ! हां पहिले जिससे विवाह करने गए थे, वह देखने में कैसी थी ? "

प्रेमदास,—"कैसी थी ! सुनो, अमावास्या की रात्रि की तरह घोर मसीतुल्य वर्ण, बिल्ली सी आंखें, शृगाल-सम मुख, और कहां तक कहूं—ऊपर नीचे सब गोलमाल ! "

सुबदना,—"प्रेमदास ! शान्त होजाओ ! समझा मैंने ! उसके

ब्याह के लिये कितने रुपए तुम ले गए थे ? "

प्रेमदास,—"असंख्य ! ! ! ब्याह का नाम सुनते ही घर-द्वार, खेती-बारी, सब बेंचबांच कर जो कुछ आया, सो श्रीचरण में चढ़ाने के लिये ले गया था, पर तौभी बुरी तरह निकाला गया।"

सुबदना,—"अच्छा, वे रुपए अब कहां हैं !"

प्रेमदास,—"उन्हें मैने एक पुराने पीपल के पेड़ के नीचे गाड़ रक्खा है, इसलिये कि उन्हें देखकर ब्याह की याद आजाती थी।"

सुबदना,—"अच्छा प्रेमदास ! सब बात पक्की हुई। अब तुम सूतो, मैं जाऊं। "

प्रेमदास,—"जाओगी ? अच्छा, अपने अंचल में एक गांठ लगालो, जिसमें मेरी बात की याद बनी रहै ! "

सुबदना,—"यह देखो, मैने गांठ लगा ली ! कल सबेरे फिर हमलोगों की बातचीत होगी और दिन ठीक किया जायगा। मैं जाऊं न ? दण्डवत् , दण्डवत् ! सूतो, सूतो ! बहुत रात बीत गई है। "

सुबदना के मिष्टालाप से प्रेमदास अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और हर तरह की शुभ चिन्ता का मन में आंदोलन करते करते निद्रित हुए। सुबदना भी सरला के समीप जाकर सोगई। सबको निद्रित जान कर चिन्ताकुल अनाथिनी निज कर्तव्य-कर्म सिद्ध करने के लिये उठी और धीरे धीरे कापालिक के भग्नगृह की ओर चली।

अष्टम परिच्छेद.

तरुतल।

"जीवति जीवति नाथे, मृते मृता या मुदा युता मुदिते।
सहजस्नेहरसाला, कुलवनिता केन तुल्या स्यात्॥"

(शार्ङ्गधरः)

मार्ग में अनाथिनी कुछ देख कर स्तंभित हुई! उसने देखा कि, 'एक पेड़ के नीचे कोई मनुष्य सो रहा है!' यह देखकर वह जल्दी जल्दी उस पथिक के पास गई। चन्द्रमा की स्वच्छ चांदनी में उसने देखा कि, 'उस निद्रित पुरुष के सब शरीर में "सरला सरला" लिखा है!' "सरला" का नाम देखकर अनाथिनी ने सोचा कि, 'जान पड़ता है कि यही व्यक्ति मेरी सरला के लिये पागल और उदासीन हुआ है!' अहा! सरला इसके प्रेम की सामग्री है! उस प्रेमप्रतिमा को न पा कर ये उदासीन हुए हैं! ये यथार्थही उदासीन हैं!!! अहा! ये संसाराश्रम छोड़ कर बन बन की धूल उड़ाते फिरते और दिन बिताते हैं!"

हाय! स्त्रीजन क्या इतनी निठुर होती हैं? अबला का हृदय क्या ऐसा बज्रसा होता है? रमणी का प्राण क्या इतना कठोर है? यदि सरला आती तो उसे मैं दिखाती कि, 'तेरे प्रेम से बञ्चित होकर एक व्यक्ति ने उदासीन-वृत्ति धारण की है!' कितनी स्त्रियां पुरुष के लिये पागल हो जाती हैं, और कितनी चाह के पात्र को न पाकर उन्मादिनी होती हैं! मैं यहां क्या कर रही हूं? उपकार करनेवाले हरिहरप्रसाद के पुत्र का उद्धार करने मैं आई हूँ, मैं क्या उन्हें चाहती हूं? हां!!! यह तो मैंने मन में संकल्प किया है कि, 'यदि उन्हें न पाऊंगी तो पागलिनी बन कर प्राण छोड़ दूंगी, वा जंगल-पहाड़ों में जहां तहां डोला करूंगी!' हा! ये उदासीन यहां क्यों आए? ये क्या उस बंदी का कुछ हाल जानते हैं? इनसे पूछूं क्या? यदि ये उठकर कहें कि, 'बंदी तो कात्यायनी के चरण

में बलि होगया, अब इस पापमय पृथ्वी में नहीं है!' हा! तब मैं कहां जाऊंगी! यदि कभी सरला से भेंट हो तो उससे मैं क्या कहूँगी? जो कहीं हरिहरबाबू के संग मेरा साक्षात् हो तो उन्हें मैं क्या जवाब दूंगी? उदासीन को सोने दूं! भग्नगृह पास ही तो है, पहिले वहीं चलूं। बंदी के भाग में वा मेरे कर्म्म में क्या बदा है, इसे देखूं; व्यर्थ किसीकी नींद क्यों खोलूं?"

इसी तरह सोचते सोचते उदासीन को बिना जगाए ही अनाथिनी जल्दी से अग्रसर हुई, और भग्नगृह के समीप पहुंची। घर के भीतर जाकर उसने देखा कि, 'सब घर सूनसान पड़ा है! जिसमें बंदी था, वह भी खुला भनभना रहा है, और कापालिक का भी कुछ पता नहीं है!' बंदी को न देख कर अनाथिनी पागल की तरह होगई! वह सोचने लगी कि, 'हा! बंदी कहां गया और कापालिक किधर गया?' इत्यादि सोच विचार करती करती वह जोर से चिल्ला कर पुकारने लगी,—"बंदी कहां है? बंदी कहां है?" पर किसीने कुछ उत्तर न दिया, केवल टूटे खँडहर ने प्रतिध्वनि से उत्तर दिया! भग्नगृह कुछ अँधेरा था, इसलिये अनाथिनी को ऐसा जान पड़ा कि, 'मानों एक कोने में बंदी बँधा खड़ा है! मानो कारागारा ही में से मुझसे बातें कर रहा है! मानों अपनी हथकड़ी-बेंड़ी दिखाकर उसे तोड़ देने का अनुरोध कर रहा है!' अनाथिनी जो उस कल्पनाकृत बंदी के पास गई तो कहीं कुछ नहीं दिखाई दिया!!! वह उसकी केवल कल्पना-मात्र रही। तब वह उन्मत्त की तरह बकती-झकती, टूटे-फूटे मन को बटोर कर भग्नगृह से बाहर हुई, और उसी वृक्ष के नीचे आई, जहां उदासीन सोता था; किन्तु हा! अब वह उदासीन कहां चला गया! अनाथिनी के मन में बड़ा दुःख हुआ कि, 'यहीं उदासीन को जगा कर क्यों न सब हाल पूंछ लिया? और सरला का समाचार सुना कर क्यों न उसकी उदासीनता दूर की?' इस समय बंदी का विषय भूलकर वह उदासीन की खोज में इधर-उधर भटकने लगी! किन्तु फिर उसने सोचा कि, 'शायद उदासीन पांथनिवास में जाकर सरला से मिल गया हो!' यह सोच-समझ कर पांथनिवास की ओर वह चली। थोड़ी देर में वहां पहुंच कर वह बहुत घबरा गई, क्योंकि किसीने उस पान्थ-

निवास में आग लगा दी थी और वह भस्म होरहा था! अग्नि सुवदना की कोठरी तक पहुंच गई थी, पर अनाथिनी जी पर खेलकर भीतर घुस गई। उसने सब कोठरियां देखीं, पर सभी खाली पड़ी थीं। अनाथिनी के मन से अब उदासीन की सभी चिन्ता दूर हुई, केवल, 'सरला, सुवदना और प्रेमदास की दशा क्या हुई,' इसी सोच से वह अतिशय कातर होने लगी।

उसने विक्षिप्तप्राय होकर चिल्लाकर पुकारा,—"सरला, सरला! प्रेमदास, प्रेमदास! सुवदना, सुवदना!!!"

इसी समय न जाने किसने पीछे से उसका अंचल खींचकर चंचल होकर पूछा,—"सरला, सरला! कहां है? कहां है, सरला?"

अनाथिनी ने मुख फेर कर देखा कि, "वही उदासीन सामने खड़ा है!!!"

अनाथिनी क्या उत्तर देती? ठहरकर उदास होकर बोली,—"सरला इसी घर में थी, इस समय शायद वह किसी दूसरी जगह गई है!"

उदासीन ने आग्रह से पूछा,—"कौन सरला? हरिहरबाबू की कन्या?"

अनाथिनी,—"हां! वही!"

अनाथिनी का प्रत्युत्तर सुनकर उदासीन हर्षित हुआ। इसी समय एक क्षीणस्वर उन दोनों के कानों में गया। तब दोनों उसस्वर को लक्ष्य करके दौड़े, और जाकर उन दोनों ने देखा कि,—"हाथ-पैर बँधा हुआ एक व्यक्ति पड़ा है!"

"यह कौन है?" उन दोनों ने उसे चीन्हा; अनन्तर यत्न के सहित उसे एक निरापद स्थान में वे दोनों ले गए।

देवमंदिर ।

"सदा प्रदोषो मम याति जाग्रतः,
सदा च मे निश्वसतो गता निशा ।
त्वया समेतस्य विशाललोचने,
ममाद्य शोकान्तकरः प्रदोषकः ॥"

(कलाधरः)

सुबदना, प्रेमदास और सरला घर का जलना देखकर अनन्योपाय होकर पान्थनिवास से भाग गए थे, अनन्तर उन तीनों ने समीपवर्ती देवमंदिर में आश्रय लिया था। इस मंदिर में श्रीराधाकृष्ण की जुगल-जोड़ी बिराजती थी। अब तक आकाश में चन्द्रमा चमकता था।

सरला सोच में डूबी थी कि, "अनाथिनी कहां है? क्या वह अपने काम में सफल-मनोरथ हुई?" सुबदना चिन्ता करती थी कि, "किसने मेरे पान्थनिवास में डाह से आग लगाई?" और प्रेमदास विचारते थे कि, "अब मेरे साथ सुबदना क्यों नहीं हास-बिलास करती?"

सवेरा हुआ और प्रेमदास मंदिर में जाकर श्रीराधाकृष्ण के दाम्पत्य सद्भाव की महिमा मन में सोचने लगे। उन्होंने मन में बिचारा कि, "सुबदना के संग जो मेरा इस प्रकार मिलन हो तो मैं कितना सुखी होऊंगा?" यही सोचते सोचते छिप छिप कर वे सुबदना की ओर देखने लगे। फिर राधा और कृष्ण का मन में स्मरण करके उन्होंने भक्ति से प्रणाम किया। धीरे धीरे सूर्य्य की असंख्य किरणों से पृथ्वी छा गई, और प्रेमदास मारे भूख के बिकल होने लगे। ठाकुर के पुजारी का घर पास ही था; सो, प्रेमदास उनसे चावल-दाल आदि भोज्य-सामग्री मोल लेकर एक पेड़ के नीचे रसोई बनाने लगे। पहिले उन्होंने सरला और सुबदना को भोजन कराया, पर उनका जी काँपता था कि, "कहीं मुझे थोड़ा न बचे।" किन्तु उनका भाग्य अच्छा था कि उन दोनों ने थोड़ा ही खाया। पीछे

आड़ में पालथी जमाकर सब सामग्री पेटरूपी बिशाल गड़हे में उन्होंने ठूंस ली। अब सूर्य्यदेव मध्याकाश में पहुंच गए थे। भोजन करके प्रेमदास ने बड़ी खोज-खाज पर एक तालाब देखा, और देह मांजने के लिये उसमें वे कूद पड़े! सरला और सुखदना की अनेक चिन्ताएं दूर हुईं, क्योंकि उसी समय वहां पर अनाथिनी पहुंच गई थी।

पहिले तो सरला का मुंह सूख गया, फिर डरते डरते उसने अपने भाई का हाल पूछा। अनाथिनी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, किन्तु वह खिलखिला कर हँसनेलगी। इतने दिनों में आज अनाथिनी के मुंह पर हँसी दिखाई दी थी।

सरला ने आह्लादित होकर पूछा,—"भैया कहां हैं? क्या उन्हें तुम छुड़ा लाईं? एं! जहां तुमने उन्हें देखा था, वे वहीं थे? किस अवस्था में वे थे? कापालिक ने उन्हें कैसे छोड़ा?"

अनाथिनी ने सरला की सब बातों का उत्तर केवल एक अक्षर "ना!" से दिया।

सरला ने उत्सुक होकर पूछा,—"भैया कहां थे, और अब वे कहां हैं?"

अनाथिनी,—"कहां थे! जहां हमलोग थीं, वहीं!"

सरला कुछ चञ्चल होकर बोली,—"अरे! मेरे तो प्राण गए और तुम्हें हँसी सूझी है! इस समय हँसी को ताक पर धर दो; देखो तो सही! छोकड़ी ने भतार पाकर रसिकता की पराकाष्ठा दिखा दी!—बोलोजी, बोलो जल्दी! भैया कहां हैं?"

अनाथिनी ने फिर हँसकर कहा,—"पान्थनिवास की जिस कोठरी में हमलोग थीं, उसीके बगल में वे भी थे।"

सरला,—"वहां उन्हें कौन लाया और कापालिक के हाथ से किसने छुड़ाया?"

अनाथिनी,—"एक उदासीन ने कापालिक के हाथ से उनका उद्धार किया।"

सरला,—"कौन उदासीन? और कैसे छुड़ाया?"

अनाथिनी,—"एक दिन वे उदासीन कापालिक के भग्नगृह के पास भ्रमण करते थे। रात्रि भीषण मूर्त्ति धारण किए बन में राज्य करती थी। उसी समय उन्होंने देखा कि, 'भागीरथी के

किनारे एक कात्यायनी देवी की मूर्त्ति स्थापित है, उसके पदतल में एक अभागा शृङ्खलाबद्ध औंधा पड़ा है, और देवी के सामने आसान मारे कापालिक ध्यान में मग्न है!' उदासीन बंदी को चीन्हते थे, सो उसकी भयानक विपद देखकर उनका मन भर आया। फिर धीरे से उस बंदी को गोद में उठा कर वहांसे वे खसक दिए और कापालिक को उन्होंने खूब ही धोखा दिया।"

सरला,—"भई! उदासीन कौन? वे कहां हैं? अहा! उदासीन बड़े उपकारी हैं। क्या वे बंदी मेरे भैया ही हैं! हां फिर?"

अनाथिनी,—"फिर उदासीन उन्हें लेकर जङ्गल से बाहर होते थे कि सहसा कोई बंदी को उनसे छीनकर अदृश्य होगया!"

सरला,—"कौन, कौन?"

अनाथिनी,—"वे दो डांकू थे!"

सरला,—"वे दोनों कौन थे? और क्यों भैया को हर ले गए?"

अनाथिनी,—"उदासीन से विदित हुआ कि, 'उन दोनों में से एक मुसटण्डा रामशङ्कर और दूसरा मजिष्ट्रेट को घायल करनेवाला फकीर था।"

सरला,—"रामशङ्कर, क्या सर्वनाश! वह तो बाबा का जात-शत्रु है! वह यहां कैसे आया?"

अनाथिनी,—"जबसे मजिष्ट्रेट घायल हुए हैं, तबसे रामशङ्कर और वह फकीर जङ्गलों में छिपे डोलते हैं!"

सरला,—"वे दोनों भैया को कहां ले गए? क्या किया?"

अनाथिनी,—"उन दुष्टों ने उनका दोनों हाथ-पांव बांध कर सुबदना के पान्थनिवास में रक्खा था। पीछे हमलोग वहां गई थीं।"

सरला,—"ठीक कल संझा को तीन आदमी वहां आकर तीन कोठरियों में टिके थे, यह तो सुना था, और देखा भी था कि एक जन का हाथ पैर बँधा था। पर अंधेरे के कारण उसे अच्छी तरह नहीं देख सकी। हाय! उन्हीं दुष्टों ने पान्थनिवास में आग लगाई थी?"

अनाथिनी,—"हां उन्हीं दुष्टों ने तुम्हारे भाई के सर्वनाश करने के लिये पान्थनिवास में आग लगाई थी।"

सरला,—"हां, भाई! अब भैया कहां है?"

अनाथिनी,—" सरला! भग्नगृह से आकर मैंने देखा कि, 'पांथनिवास जलता है!' मैंने भीतर जाकर तुमलोगों को वहां नहीं देखा, फिर बाहर आकर तुम्हारे भाई का आर्तनाद सुना, तब उदासीन की सहायता से तुम्हारे भाई को एक निरापद स्थान में रख आई हूं। उनका कोई अनिष्ट नहीं हुआ है। उदासीन के अनन्त यत्न से उन्होंने आरोग्य लाभ किया है। पालकी भाड़ा करके उन्हें घर भेज कर तुमलोगों को खोजने मैं यहां आई हूँ।"

सरला,—" आह! प्राण बचे! भई! सखी! तुम धन्य हो! भावी पति के उद्धार के लिये तुमने क्या नहीं किया! अच्छा! वे हमलोगों के परम उपकारी उदासीन कहां हैं? अहा! वे क्यों उदासीन हुए हैं?"

अनाथिनी,—" अपनी चाह की वस्तु नहीं पाने से इस कोमल सुकुमार वय में वे उदासीन हुए हैं।"

सरला,—" वे किसे चाहते हैं?"

अनाथिनी,—" किसे चाहते हैं? अरे, एक सामान्य उदासीन की बात पूछकर तुम क्या करोगी?"

सरला,—" वाह भाई! क्यों न पूछूं! वे हमलोगों के परम उपकारी हैं। यदि उनका तिल भर भी प्रत्युपकार मैं कर सकूं तो अपने को धन्य समझूं!"

अनाथिनी,—" तुम उनका अशेष उपकार कर सकती हो परन्तु— — —"

सरला,—" परन्तु क्या? अनाथिनी! बताओ, मैं कैसा और कौन सा उनका उपकार कर सकती हूँ!"

अनाथिनी,—" तुम अवश्य करोगी?"

सरला,—" करूँगी, प्राण जो देना पड़े तो वह भी—"

अनाथिनी,—" स्वीकार करती हो न? केवल प्राण नहीं देना पड़ेगा, मन और प्राण दोनों देने पड़ेंगे!"

सरला,—" यह क्या? अनाथिनी!"

अनाथिनी,—" तो फिर प्रतिज्ञा क्यों की? अब उनकी अभिलाषा पूर्ण करो!"

यह कहती हुई अनाथिनी मन्दिर के बाहर आई और थोड़ी [illegible]

अनाथिनी ने उदासीन को निश्चय करा दिया था कि, ' सरला से जरूर तुम्हारा परिणय होगा; ' इससे उनका उदासीन भाव मिट गया था, और सरला से मिलने के लिये अनाथिनी के संग वे मन्दिर में आए थे। अनाथिनी ने उन्हें एक निभृत-निवास में थोड़ी देर के लिये छिपा रक्खा था, और सरला के मन की परीक्षा लेने के लिये अकेली मन्दिर में गई थी। अब सरला के चित्त का मर्म जानकर और पहिला गर्व दूर हुआ देखकर उपकारी की वाञ्छा पूरी करने के लिये वह यत्न करने लगी।

उदासीन को देखते ही सरला थर्रा कर स्तम्भित होगई! उसने मन में सोचा कि, " अहा यही व्यक्ति, जिसे पहिले अनादर करके बिदा कर दिया था, मेरे लिये उदासीन हैं! ये ही मेरे प्रेम के भिखारी हैं? ये ही सहोदर भाई के उद्धारकारी हैं! धन्य भाग्य! "

अनाथिनी सरला की अदृष्टपूर्व लज्जा देख, हँस कर बोली,—
" सरला! अपने पागल की इच्छा पूरी करो। ये तुम्हारे प्रेमाकांक्षी हैं! उस दिन तुमने इन्हीं को न स्वप्न में देखा था? स्वप्न में इन्हीं से न विवाह किया था? ये तुम्हारे सच्चे पति हैं। पहिले जो अज्ञानता से इनके संग खोटा व्यवहार किया था, चरण थाम कर उसे क्षमा कराओ। सरला! देखो! अपनी प्रतिज्ञा न भूलना, जो अभी की थी। "

सरला ने लज्जा से घूंघटपट में मुख छिपा कर अपनी प्रतिज्ञा की सत्यता " मौनं सम्मतिलक्षणं " से दिखा दी। उसे आनन्दाश्रु के संग रोमाञ्च हो आए! उसने मन ही मन कहा, ' मैं अपनी प्रतिज्ञा जरूर पूरी करूँगी! '

अनन्तर सबने चलने की तयारी की, पर प्रेमदास बाजार गए थे, इसीसे थोड़ा ठहरना पड़ा।

दशम परिच्छेद

प्रेमप्रसंग ।

"असारभूते संसारे, सारभूता नितम्बिनी ।
इति सञ्चिन्त्य वै शम्भुरर्द्धाङ्गे पार्वतीं दधौ ॥"
(कलाधरः)

सब परम आह्लादित हुए । अनाथिनी छल करके टल गई थी । सो एकान्त में सरला और सुजनकुमार से जो प्रेम सम्भाषण हुआ, उसे लिखने का हमारा अधिकार नहीं है; यदि हृदय हो तो प्रेममयी प्रियपाठिकागण उसका मर्म स्वयं समझ लें । उदासीन का नाम सुजनकुमार था ।

सुबदना एक ब्राह्मण की कन्या थी । उसकी जब सात वर्ष की अवस्था थी, तो उसके विवाह की बात ठहरी; किन्तु अभाग्यवश सब बात पक्की होने पर ब्याह होने के एक दिन पहिले उसका भावी पति परलोक सिधारा । अनन्तर जाति के कट्टर और पुराने टाइप के बकधार्मिक लोग सुबदना की माता के ऐसे विपक्ष हुए और बार-बार धमकाने लगे कि, 'यदि अब इस लड़की का पुनर्विवाह करेगी, तो तुझे जात से काट देंगे, क्योंकि यह विधवा होगई !' इत्यादि असभ्य बातें सुनकर सुबदना की मां नितान्त मृयमाणा हुई, पर वह बिचारी क्या करती, और सुबदना से ब्याह कौन करता ? यह कौन सुनता या मानता कि, "पतित्वं सप्तमे पदे" के अनुसार सुबदना अभी बिलकुल क्वांरी है और केवल वाग्दान भर हुआ है ! खैर ! सुबदना की मां अनाथ एकादश वर्ष की कन्या सुबदना को छोड़कर मर गई । सुबदना पढ़ी लिखी और धर्म्मभीरु थी । उसने प्राणपण से अपने सतीत्व की आज तक रक्षा की, इसीसे हमने सुबदना को अर्द्धविधवा लिखा था !

सुबदना पहिले ही से प्रेमदास को मन ही मन चाहती थी, पर भय से यह बात प्रगट नहीं करती थी । आज दैवी घटना से ऐसा समय आया कि सब बातें खुल गई, और प्रेमदास ने भी शास्त्र-रीति से उससे ब्याह करना स्थिर किया । सुबदना अद्वितीय

सुन्दरी होकर जो एक साधारण रूप और विद्या वाले दरिद्र प्रेमदास के ऊपर निछावर होगई, इसे केवल सच्ची चाह की महिमा जाननेवाली सहज ही अनुभव कर लेंगी।

सुबदना प्रेमदास की बाट देखती हुई बाहर बैठी थी। थोड़ी देर में भयानक चीत्कार करते करते प्रेमदास भागते भागते, कांपते कांपते, हांफते हांफते सामने उपस्थित हुए!!! उनके इस अलौकिक काम से सभी चमत्कृत हुए!

सुबदना ने हँसकर पूछा,—"क्यों जी! क्या बात है?"

प्रेमदास सुबदना की ओर देखकर कांपते कांपते बोले,—"मैं जब पुष्करिणी में नहाने गया था, उसी समय दो सवार!—हाय भयानक तरवार की वर्षा!!! बड़े बली और और— — —"

सुबदना,—"अश्वारोही?—क्या कहा? घबड़ाओ मत, सम्हल कर धीरे धीरे कहो।"

प्रेमदास,—"उन लोगों ने मुझसे पूछा कि, 'रामशङ्कर को जानते हो? वह कहां है, कह सकते हो'?"

सुबदना,—"तो उन्होंने इतना ही पूछा, तुम अब इतना कांपते क्यों हो?"

प्रेमदास,—"सुबदना! वे डांट डांट कर मुझसे पूछते थे। दूसरा कोई होता तो उन यमदूतों के आगे से जीता जागता न फिरता।"

सुबदना ने हँसकर कहा,—"तो तुम कैसे फिरे?"

प्रेमदास,—"मेरा श्रेष्ठ कुल में जन्म है, मैं ब्राह्मण हूं। वे दोनों यवन थे, क्या सर्वनाश!!!"

सुबदना,—"तो तुम्हें ब्राह्मण जानकर छोड़ दिया? ए!"

प्रेमदास,—"बस, और क्या?"

सुबदना,—"प्रेमदास! तुम तो साहसी हो, अब तुम्हारी हिम्मत क्या हुई? अस्तु तुमने क्या उत्तर दिया?"

प्रेमदास,—"सुबदना! पहिले मुझे बहुत साहस था, किन्तु; मैंने कहा कि, 'मैं रामशङ्कर को नहीं जानता, वह मेरा कोई नहीं है; मैंने उसे देखा भी नहीं, उसने भी मुझे न देखा होगा!"

सुबदना,—"प्रेमदास! तुम तो बड़े झूठे हो! रामशङ्कर तो तुम्हारे मालिक का बैरी है न?"

प्रेमदास,—"सच कहकर प्राण थोड़े ही देना था!"

सुबदना,—"वे पुलिसवाले होंगे। अच्छा उन्होंने क्या कहा? और वे कहां गए?"

प्रेमदास,—"वे मेरी बात सुनकर खिलखिलाकर हंस पड़े और जङ्गल की ओर चले गए।"

सुबदना,—"तो तुम इतना क्यों चिल्लाते थे?"

प्रेमदास,—"मैंने समझा कि तुम्हें तो वे नहीं उठा ले गए! और आते आते उनके डर से चिल्लाया था।

सुबदना,—"तो ऐसे डरपोक से मैं ब्याह न करूंगी!"

प्रेमदास एकाएक मृयमाण होकर बोले,—"तो अब यम से भी मैं न डरूंगा।"

सुबदना ने हंसकर कहा,—"तो करूंगी।"

प्रेमदास का मुख कुम्हिलाकर सहसा खिल गया। सुबदना के भी हर्ष की सीमा न रही! उसने अपने हँसौड़ स्वभाव के लायक अच्छा पात्र पाया। अनन्तर सुबदना प्रेमदास के संग प्रेम की बातें करने लगी।

उदासीन और सरला की बात सुनकर प्रेमदास बड़े खुश हुए, और सरला से हंसकर बोले कि, "देवी! मुझे बर देने से तुम्हें भी तुरन्त बर मिला!"

प्रेमदास की बातों से सभी प्रसन्न होते थे। अनन्तर सब कोई राधाकृष्ण को दण्डवत् करके चले। सरला ने सुबदना को भी अपने संग लेलिया।

एकादश परिच्छेद

अरण्य।

"धैर्यमावह नाथ त्वं, स्थिरो भव हरिंस्मर।
दत्वा प्राणान्निजान् त्वाहं मोक्षयिष्यामि बन्धनात्॥"
(व्यासः)

अनाथिनी एक जङ्गल के भीतर जिस मार्ग से जाती थी, वहां कुछ देख कर स्तम्भित हुई! उसने सबको आगे आने के लिये कहकर और उदासीन के कान में कुछ कहकर तथा सबका साथ छोड़कर वह अकेली जंगल में प्रविष्ट हुई और वहां पहुंच तथा कुछ देखकर बहुत ही घबरा गई! तो उसने क्या देखा? ठहरिए, कहते हैं।—

अनाथिनी के अनुरोध करने से सुबदना, प्रेमदास, उदासीन और सरला आगे चले गए थे। और वह उनलोगों का संग छोड़ कर उसी जङ्गल में ठहर गई थी। एक बटवृक्ष के नीचे कर पर कपोल धर कर वह सोचने लगी; उसने क्या सोचा? यह कि, 'अब मैं अपना प्राण देदूंगी! हाय! संसार में कोई वस्तु बिना श्रम के नहीं मिलती! अहा! हरिहर बाबू के पुत्र को छुड़ाकर उनके संग विवाह करने की मेरी इच्छा थी, किन्तु हा! वह तो विफल हुई! हा! मैंने कैसे जाना कि बिफल हुई? यह देखो एक टूटी-फूटी पालकी सामने पड़ी है! इसी पर सवार होकर भूपेन्द्र पिता के घर जाते थे। और मैंने ही बरजोरी उन्हें अकेले बिदा किया था। यह मेरी कैसी भूल हुई! मुझे उचित था कि सब कोई साथ ही साथ जाते। यदि ऐसा होता तो कदाचित कोई बखेड़ा न खड़ा होता!'

हरिहरबाबू के पुत्र का नाम भूपेन्द्र था। उन्हें कापालिक के हाथ से मुक्त करके और पालकी पर सवार कराकर घर बिदा किया था। उस शिविका को अनाथिनी चीन्हती थी, वही शिविका यहां भग्न पड़ी है! इसलिये अनाथिनी ने मन में निश्चय किया कि, भूपेन्द्र फिर किसी विपद में फँसे होंगे! इसी सोच से अनाथिनी की आँखों से चौधारे आंसू बहने लगे और बराबर

दीर्घनिश्वास निकलने लगा। थोड़ी देर में किसी प्रकार अपना मन शान्त करके वह उठी, और धीरे धीरे जङ्गल के भीतर घुसी। यह वही जङ्गल है, जिसमें कापालिक का भग्नगृह था। कांपते कांपते अनाथिनी चली जाती थी, और मन में नाना प्रकार के भावों की तरङ्गों का परस्पर आघात-प्रतिघात होरहा था। अनाथिनी इतनी अन्यमनस्का थी कि यदि सैकड़ों तोपें एक साथ छूटतीं तौभी उसके कानों पर जूं तक न रेंगती, किन्तु प्राकृतिक घटना ऐसी आश्चर्यमयी है कि जिसके कारण एक भीषण शब्द ने उसका मन अपनी ओर आकर्षित किया। मानो वह शब्द तीर की तरह उसके रोम रोम में चुभ गया, और वह इतिकर्तव्यविमूढ़ होकर कांपने लगी।

उसने सुना कि, 'बाममार्गी कापालिक की कलुषितभावों से भरी मंत्रध्वनि बज्र-निनाद की तरह वन में गूंज रही है!' उसने समझा कि, 'बस अब दीपनिर्वाण हुआ चाहता है! जो कुछ करना हो, उसमें शीघ्रता करनी चाहिए, अब इस तुच्छ प्राण का मोह क्यों करूं? जब कि स्वयं प्राण देने को खड़ी हूं, तब फिर भय काहे का!' इत्यादि कहती कहती जिस ओर से मन्त्रध्वनि आती थी उसी ओर वह चली।

भागीरथी के किनारे पहुंचकर अनाथिनी ने देखा कि, 'पूर्व-परिचित राक्षसाकृति कापालिक प्रज्वलित अग्निकुण्ड में जोर जोर से मन्त्र पढ़ते पढ़ते मांस आदि का होम करता है, सामने एक कात्यायिनी देवी की मूर्ति सिंहासन पर स्थापित है, देवी के पैरों के पास हस्तपादबद्ध भूपेन्द्र औंधा पड़ा है और बगल में हाथ में नंगी तलवार लिये रामशङ्कर खड़ा है, तथा पास ही एक पेड़ के नीचे मनसाराम का भाई, जिसने कि मजिष्ट्रेट को छूरी मारी थी, बैठा है।' यह सब कौतुक देख कर अनाथिनी क्षणभर के लिये अचलप्रतिमा सी होगई!

पाठकों को अब विदित हुआ होगा कि मजिष्ट्रेट पर आक्रमण करने के अनन्तर, रामशंकर, मनसाराम के भाई के संग जंगल-पहाड़ों में, छिपा फिरता था, क्योंकि उन दोनों पर वारण्ट जारी था।

गत परिच्छेद में जिन अश्वारोहियों ने प्रेमदास से रामशंकर का

हाल पूछा था, वे पुलिस के आदमी थे।

जबसे उदासीन ने भूपेन्द्र को कापालिक के हाथ से मुक्त किया था, तबसे कापालिक फिर भूपेन्द्र के अनुसन्धान में था।

जबसे अनाथिनी का पक्ष लेकर हरिहरबाबू ने रामशंकर को उचित शिक्षा दी थी, तबसे वह हरिहरबाबू का जातशत्रु हो गया था। उसीने कापालिक से मिलकर भूपेन्द्र के सर्वनाश का षड्यंत्र रचा था। इसमें यह मतलब था कि, 'भूपेन्द्र के मारे जानेसे हरिहरबाबू भी एक प्रकार मृतकल्प होजायंगे, तब अनाथिनी वस्तुतः अनाथिनी होजायगी! तब उसे मैं अपनी गणिका और सुरेन्द्र को दत्तकपुत्र बनाऊंगा।' बस इसी अभिप्राय से उस पतित ने यह जाल फैलाया था।

अभाग्यवश उसी जंगल से होकर भूपेन्द्रबाबू अपने घर जाते थे। मार्ग में रामशंकर और कापालिक ने उन्हें चीन्ह कर फिर पकड़ लिया, और असार संसार से शीघ्र विदा करने के लिये, गंगा किनारे अभिचार रचा था।

इस भयानक व्यापार को देखकर अनाथिनी का हृदय विदीर्ण, प्राण जीर्ण, मन संकीर्ण और देह शीर्ण होगया। वह व्यथित-अन्तःकरण से कापालिक के पास जाकर रोते रोते विनीतभाव से कहने लगी,—"महाशय! आपको तो नरबलि देनी है न? तो इन निर्दोष पुरुष को छोड़ कर इनकी जगह मुझे देवी के आगे बलि चढ़ा दीजिए। मांसलोलुप देवी कामिनी के कोमल तथा कमनीय और मीठे मांस से ज्यादे प्रसन्न होंगी! इनके मरने से एक घर का चिराग बुझ जायगा, किन्तु मेरे पीछे कोई रोनेवाला नहीं है; इसलिये दया करके इन्हें छोड़ कर मेरा बध करिए।"

अनाथिनी महाविलाप-पूर्वक बारम्बार यही कहती और कापालिक तथा रामशङ्कर के चरणों में लोटती थी, पर किसी पाषाण-हृदय ने उसकी बातों पर भ्रूक्षेप भी नहीं किया! रामशङ्कर कापालिक की आज्ञा का आसरा देख रहा था। होम समाप्त होने पर कापालिक ने भूपेन्द्र के बध और बलि की आज्ञा दी।

भूपेन्द्र ने कापालिक की बहुत बिनती करके अनाथिनी से अन्तिम समय की विदा लेने की अनुमति ली, और सकरुण तथा क्षीणस्वर से वे बोले,—

"कोमलहृदये! अब क्यों व्यर्थ तुम अनुनय-विनय करती हो! तुम्हारे आर्त्तनाद पर कौन दया करेगा! विधाता की इच्छा नहीं है कि मेरा उद्धार हो! अहा! प्यारी! तुमने मेरे उद्धार के लिये सब कुछ किया, किन्तु यही दुःख मेरे मन में है कि मैं कुछ भी तुम्हारा प्रत्युपकार नहीं कर सका! अस्तु—हरेरिच्छा बलीयसी!!! तुम सरला से कहना कि वह उदासीन के संग ब्याह करले और प्रिये! तुम जाकर मेरे वृद्ध पिता की सांत्वना करना!

यह सुनकर अनाथिनी कुछ भी नहीं बोली, किन्तु ऊंचे स्वर से रोने लगी। कापालिक ने भूपेन्द्र को डांटकर बलि चढ़ाने के लिये प्रस्तुत किया! रामशङ्कर तलवार उठाकर भूपेन्द्र का सिर धड़ से अलग किया चाहता था कि बन में घोड़ों की "टपाटप" टाप सुनाई पड़ी। और कई अश्वारोहियों ने आकर क्षणभर में कापालिक, रामशङ्कर तथा फकीर को पकड़ लिया। ये वेही लोग थे जिन्होंने प्रेमदास से रामशङ्कर का हाल पूछा था। यह हाल देखकर अनाथिनी बड़ी मगन हुई और चटपट भूपेन्द्र का बन्धन खोलकर हंसीखुशी उनके संग आनन्दपुर चली।

मार्ग में उन दोनों प्रेमियों में जो कुछ प्रेम की बातें हुईं, उनका सविस्तर वर्णन तो हम कहांतक करें; हां, इतना हम जरूर कहेंगे कि भूपेन्द्र अनाथिनी का अथाह प्रेम देखकर उस पर पूर्णरूप से अनुरक्त होगया और कहने लगा,—"प्यारी, तुमने अपनी जान पर खेलकर मेरी जान बचाने के लियें अपने हृदय की जैसी दृढ़ता दिखलाई है, उसे मैं आजन्म न भूलूंगा।"

अनाथिनी ने हंसकर कहा,—"प्यारे! इस विषय में मैंने तो कुछ भी नहीं किया! हां, तुम जगदीश्वर को असंख्य धन्यवाद दो कि उस परमात्मा की प्रेरणा से ठीक समय पर पुलिसवाले पहुंच गए, नहीं तो महा अनर्थ होजाता।"

भूपेन्द्र ने कहा,—"कुछ भी हो, परन्तु तुम्हारे हृदय की गरिमा मैंने भली भांति जानली।"

बस, इसके अतिरिक्त पारस्परिक प्रणयसम्भाषण की विशेष बातों का अनुभव भुक्तभोगी महाशय और महाशयाजन स्वयं करलें तो अच्छा हो।

परिशिष्ट ।

" नित्यं भवन्ति संसारे, बह्व्यः प्रकृतिजाः क्रियाः ।
जनानां भिन्नभावानां, नानामार्गानुयायिनाम् ॥ "
(व्यासः)

यों शुभ दिन, शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त में अनाथिनी के संग हरिहरबाबू के पुत्र भूपेन्द्रकुमार का शुभ विवाह होगया और उन दोनों के आनन्द की सीमा न रही ।

सरला से उदासीन का गँठ-बंधन हुआ और वे दोनों प्रणयी भी आनन्दसिंधु में डूब गए ।

सुबदना से प्रेमदास का परिणय हुआ और उन्हें हरिहरबाबू ने भूसम्पत्ति देकर अयाची कर दिया । सुबदना इस हर्ष में फूली नहीं समाती थी ।

मनसाराम को सुरेन्द्र के चुराने के अपराध में तीन वर्ष का सपरिश्रम कराबास, कापालिक को यावज्जीवन द्वीपान्तर, मजिष्ट्रेट को छुरी मारनेवाले मनसाराम के भाई को जन्मभर का कालापानी और रामशंकर को दस वर्ष के कारागार का दण्ड हुआ ।

हमने सुबदना, सरला और अनाथिनी की रूपराशि का वर्णन नहीं लिखा है, इससे रूपगर्वितागण रुष्ट होंगी; किन्तु हम क्या करें ! क्योंकि वे तीनों अद्वितीय रूपवती थीं, अतएव उन निरुपमाओं की किसको उपमा देते ? यदि कोई रूपगर्विता पाठिका उन तीनों के रूप की छटा देखा चाहें तो पहिले अपने रूप को निरा पानी समझें, तब उन तीनों रमणियों की छबि स्वयं आँखों के आगे आ जायगी ।

अनाथिनी का नाम हरिहरबाबू ने " गृहलक्ष्मी " रक्खा था ।

अन्त में इतना और भी समझलेना चाहिए कि मनसाराम के भाई ने जिन मजिष्ट्रेटसाहब को छुरी मारी थी, वे दो महीने के अन्दर अच्छे होगए थे । इस प्रकार पाप और पुण्य का परिणाम दिखाया गया है । इतिश्री ।

श्रीः

इन्दुमती वा वनविहङ्गिनी।

ऐतिहासिक उपन्यास।

मूल्य दो आने।

यह उपन्यास अब तीसरी बार छपा है। यह ऐतिहासिक उपन्यास है। है तो यह छोटा, पर काम इसका बहुत बड़ा है। इसकी आश्चर्यजनक घटनाएं तथा अद्भुत वृत्तान्त पढ़कर उपन्यास के प्रेमी पाठक बहुत ही प्रसन्न होंगे। इसमें पन्द्रहवीं शताब्दी की एक बड़ी ही सुन्दर और रोचक कहानी का वर्णन है। दिल्ली के बादशाह इबराहीमलोदी का अजयगढ़ के राजा राजशेखर को दिल्ली में बुलाकर विश्वासघात करके मारडालना, इसका बदला राजशेखर के पुत्र चन्द्रशेखर का इबराहीम को मारकर चुका लेना। फिर चन्द्रशेखर का भटकते हुए विन्ध्याचल के घोर वन में इन्दुमती से भेंट होना, इन्दुमती के पिता का दोनों, अर्थात् चन्द्र-शेखर और इन्दुमती के सच्चे और अगाध प्रेम की परीक्षा बड़े ही विचित्र ढंग से लेना और फिर इन्दुमती का विवाह चन्द्रशेखर के साथ कर और इबराहीम से सताए जाने की अद्भुत कथा सुनाकर बूढ़े ने इन्दुमती को चन्द्रशेखर के संग बिदा किया और आप तप करने हिमालय की ओर चला गया। उपन्यास उत्तम है।

मिलने का पता,—मैनेजर श्रीसुदर्शनप्रेस,

वृन्दावन (मथुरा)

इन्दिरा।

यह उपन्यास बङ्गभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय श्रीयुत बङ्किमचन्द्र चटर्जी का लिखा है। इसका हिन्दी अनुवाद श्रीमान् पण्डितकिशोरीलाल-गोस्वामीजी ने किया है। यह उपन्यास बड़ा ही दिलचस्प और अनूठा है। इन्दिरा का ससुरार जाते समय रास्ते में डाकुओं के द्वारा लूटी जाना, फिर जङ्गलों में भटकना, और धीरे धीरे एक वकील के यहां रसोई करने पर रहना, और वकील की स्त्री के साथ सखी-भाव का स्थापित होना, और बूढ़ी मिसरानीजी की दिल्लगी, पके बालों में खजाब का परिहास आदि देखने ही योग्य है। अन्त में इन्दिरा के पति का वकील के यहां आकर ठहरना, और फिर इन्दिरा का अपने पति के पास 'परनारी' के रूप में जाना, और इन्दिरा को उसके पति का 'पर-स्त्री' समझकर ग्रहण करना, और उसे लेभागना। फिर अन्त में भेद का खुलना और इन्दिरा का सुखी होना, आदि बड़ी ही विचित्र घटनाएं इस उपन्यास में हैं। पुस्तक पढ़ने ही योग्य है। बड़े आकार की बड़ी पुस्तक का मूल्य केवल सवा रुपया और डाक व्यय तीन आने।

मिलने का पता—श्रीसुदर्शनप्रेस, वृन्दावन।